चेकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप और संशोधनवाद के प्रसंग में

शिवदास घोष

चेकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप और संशोधनवाद के प्रसंग में

1986 में चेकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप की घटना को केन्द्र करके उठे विवादों ने विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के बीच मतभेदों को चरम पर पहुंचा दिया था, और साम्राज्यवादी इस मुद्दे को साम्यवाद के खिलाफ अपना दुष्प्रचार तेज करने में इस्तेमाल करने से नहीं चूके। उसी समय हमारे देश सहित दूसरे-दूसरे देशों की आम जनता में ही नहीं बल्कि कम्युनिस्टों में भी इसको लेकर जबरदस्त गलतफहमी पैदा हुई थी।

कॉमरेड शिवदास घोष ने इस चर्चा में कॉमरेडों द्वारा उठाये गये सवालों का जवाब दिया और इस घटना के पीछे मूल कारणों को भी दिखाया।

कॉमरेड्स,

चेकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप की घटना को लेकर आज यहां पार्टी कार्यकर्ताओं की जो सभा बुलायी गयी है, इसमें बड़ी देर तक मैंने बहुत सारे सवाल सुने हैं। इसलिए ऐसा हो सकता है कि चर्चा के दौरान कुछ अति महत्वपूर्ण प्रश्नों के उत्तर असावधानी के कारण छूट जायें। अगर ऐसा हुआ, तो आप लोग बताना।

मैं इस संबंध में चर्चा के आरंभ में ही एक बात कह देना चाहता हूं। वह यह कि चेकोस्लोवाकिया में सोवियत सैनिक हस्तक्षेप की इस घटना पर विचार करते वक्त मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में साम्यवादी आन्दोलन संबंधी हमारी पार्टी का जो विश्लेषण और स्टैण्ड है, खासकर मौजूदा साम्यवादी आन्दोलन में जो सब समस्याएं और जटिलताएं उभरकर आयी हैं, नव संशोधनवाद का जो खतरा पैदा हुआ है–इसके संबंध में पार्टी का विश्लेषण यदि सम्पूर्ण रूप से हमारे सामने न रहे, तो हम किसी न किसी रूप में कुछ गलती

कर बैठेंगे। यानी कि हमारा विश्लेषण मुख्यत: सटीक होने के बावजूद विषय पर विचार करने के मामले में या इसके किसी खास पहलू की विवेचना करते वक्त उस पर बल देने के संबंध में हमसे कुछ गलती हो जाने की संभावना रह सकती है। मैं समझता हूं, एक मायने में यह घटना बड़े सहज-सरल रूप में सामने आयी है। इसमें कोई खास जटिलता नहीं है, हालांकि इसको लेकर पूरी दुनिया में जोरों से चर्चा चल रही है। यदि आप बारीकी से गौर करें तो पायेंगे कि पूंजीवादी-साम्राज्यवादी खेमे में ही अधिक शोरगुल हो रहा है। इस विषय को लेकर एक बड़े महत्वपूर्ण सवाल के तौर पर उन्हीं के बीच ज्यादा शोरगुल मचा हुआ है जो साम्यवादी आन्दोलन में संशोधनवादी के तौर पर जाने जाते हैं जिन्हें हमलोग भी संशोधनवादी मानते हैं। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी, अल्बानिया की लेबर पार्टी और मैं समझता हूं कि विभिन्न मुल्कों में आज भी जो लोग मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मूल क्रांतिकारी सिद्धांत को लेकर चल रहे हैं और मौलिक रूप से क्रांतिकारी सरगरर्मी और सुर को पकड़े हुए हैं, थोड़ी-बहुत जो भी त्रुटि-खामी-सीमाबद्धता उनमें क्यों न हो, उनके लिए यह गंभीर चिंता का विषय नहीं है या उनके समक्ष यह आश्चर्यजनक घटना भी नहीं है, जिसको लेकर इतना शोर-गुल हो।

सोवियत नेतृत्व का संशोधनवाद ही मुख्य रूप से जिम्मेदार है

दरअसल इस बात को हमें अच्छी तरह समझने की जरूरत है कि मौजूदा सोवियत नेतृत्व का संशोधनवादी नजरिया ही मूल समस्या है और इसी ने मुख्यत: चेकोस्लोवाकिया की घटना के पीछे भी मूल कारण के रूप में काम किया है। आप जो लोग यहां उपस्थित हैं, पार्टी के स्टैण्ड को बहुत बार सुनते व समझते आ रहे हैं और आप जानते भी हैं कि सोवियत संघ का मौजूदा नेतृत्व संशोधनवादी राह पर चल रहा है। इस बात के जरिये हम क्या कहना चाहते हैं? हमारा कहना है कि समाजवादी आर्थिक विकास का जो नियम है उस नियम को ही सोवियत संशोधनवादी नेतृत्व उत्पादन को बढ़ाने की जल्दबाजी में नकारते हुए पूंजीवादी रुझान (trend) और प्रवृत्ति (tendency) को वस्तुत: बढ़ावा दे रहा है एवं पूंजीवाद के निर्माण

के लिए उसके पीछे की अंदरूनी सामाजिक ताकतों को, जो वहां पूरी तरह से तो खत्म (die out) नहीं हुई थीं, लेकिन बिल्कुल निष्क्रिय होकर करीब-करीब विलुप्त हो जाने की स्थिति में आ पहुंची थीं, उनके पुनर्जीवन के लिए उसने सिर्फ अवसर ही नहीं दे दिया, बल्कि उनकी साजिश के फंदे में फंसता गया। इस संबंध में बाहर के साम्राज्यवादियों के साथ सांठगांठ या जानबूझकर समझौता कितना हुआ है या नहीं हुआ है अथवा उनके षड्यन्त्र किस हद तक क्रियाशील या सक्रिय हैं–इस बात पर हमारी पार्टी ने ज्यादा दिलचस्पी नहीं दिखायी है। हमारी पार्टी ने सिर्फ यही कहा है कि जब तक समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास के नियम का सटीक तौर पर अनुसरण और प्रयोग किया गया वहां कमी-खामी या भटकाव के बावजूद तब तक इससे सोवियत संघ की मूल चरित्रगत क्रांतिकारी भूमिका में कोई भटकाव दिखाई नहीं दिया–यहां-वहां कुछ कमी-खामियों के बावजूद राजनैतिक संरचना, सोवियत राजसत्ता और पार्टी का चरित्र, इसकी मूल अन्तर्राष्ट्रीय क्रांतिकारी भूमिका सभी कुछ एक मजबूत बुनियाद पर खड़ी थी। परन्तु अब इस आर्थिक दृष्टिकोण एवं रुख जो अवैज्ञानिक है, जो समाजवादी आर्थिक विकास के नियम को नकारने के नतीजतन ही दिखाई दिया है, उसने आज सोवियत राज्य और पार्टी के क्रांतिकारी चरित्र की बुनियाद पर ही वास्तव में आघात किया है। आज सोवियत संघ में राजनीतिक तौर पर जो सिद्धांत आया है उसके पीछे अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी रुझान ही उसकी बुनियाद है।

पूंजीवादी रुझान आने का मूल कारण

इसके आने की वजह क्या है? वहां पूंजीवाद के जो बीज अपनी कार्यकारिता खोकर मरणासन्न हो चुके थे वे किस वजह से पुनर्जीवित होकर पनप सके। सिर्फ इतना ही नहीं कि मौजूदा समय में वे पनपे और एक रुझान के तौर पर प्रकट हुए हैं, बल्कि अगर मुख्य रुझान न भी कहें, तो भी वे एक प्रभावशाली रुझान के तौर पर प्रतिबिम्बित हो रहे हैं–जो पूरी पार्टी और समाजवाद के बारे में धारणा को ही विकृत कर रहे हैं। मौजूदा सोवियत नेतृत्व द्वारा की

गयी विश्व परिस्थिति की राजनीतिक व्याख्या के मामले में हो या अर्थव्यवस्था, आर्थिक संबंध विश्लेषण के मामले में हो, देखा जा रहा है कि दरअसल कुछ हद तक ऐसा ही हुआ है। वे मार्क्सवाद को कलंकित कर रहे हैं, मार्क्सवाद के नाम पर वे जिस चिंतन को प्रतिबिम्बित कर रहे हैं, वह गलत चिंतन है। इन गलतियों के कारण के बारे में हमारी पार्टी एक निष्कर्ष पर पहुंची है। हमलोगों ने कहा कि वहां के मौजूदा अपरिपक्व राजनैतिक नेतृत्व की भूमिका ही इस सबके पीछे कार्यरत है और वही इस को लायी है। यह आर्थिक शक्ति अपने आप विकसित नहीं हुई। यह जो रुझान है, जिसे मैं पूंजीवादी रुझान कह रहा हूं, जो सोवियत संघ में दबा हुआ (suppressed) था और करीब-करीब विलुप्त (eliminated) होने के कगार पर था, लेकिन फिर भी मौजूद था। जैसे वहां सामूहिक खेती की प्रणाली है, पण्य (commodity circulation) उत्पादन और परिचालन की प्रणाली है, निजी सम्पत्ति जैसे घर-द्वार, रुपये-पैसे, बैकों में रुपये जमा करना आदि है, मूल्य का नियम (Law of value) लागू है। इन सारी चीजों के जरिये यह प्रतिबिम्बित होता है कि वहां निजी सम्पत्ति का बीज नष्ट नहीं हुआ है और यह जब तक रहता है तब तक अर्थव्यवस्था में समाज के अंदर पूंजीवादी रुझान बना रहता है।

हालांकि सोवियत संघ का मौजूदा नेतृत्व इसे स्वीकार नहीं करता है। क्योंकि, उसका मानना है कि चूंकि अभी भी उद्योगों पर राष्ट्रीय मालिकाना अधिकार बना हुआ है, इसलिए पूंजीवाद का रुझान किसी भी कीमत पर नहीं आ सकता है। लेकिन वैज्ञानिक समाजवाद और उसकी आर्थिक नीतियों से जो वाकिफ हैं, वे जानते हैं कि यह कुतर्क के सिवाय कुछ नहीं है, इस संबंध में लेनिन ने बार-बार सतर्क किया है कि समाजवादी क्रांति और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व स्थापित होने के बाद भी जब तक लघु पैमाने पर उत्पादन पूरी तरह से विलुप्त नहीं हो जाता, जब तक किसी भी रूप में निजी सम्पत्ति विद्यमान रहती है और जब तक वह पूरी तरह से सामाजिक स्वामित्व में तब्दील नहीं हो जाती, जब तक पण्य उत्पादन और परिचालन की प्रणाली कायम रहती है, तब तक समाज

के अंदर पूंजीवाद का बीज निहित रहता है। और यह जब तक रहेगा, पूंजीवादी रुझान भी बना रहेगा। लेकिन शुरुआती समय में उसमें जितनी ताकत होती है, समाजवाद सफलता की ओर जितना अग्रसर होता जाता है, आर्थिक मामले में पूंजीवाद उतना ही परास्त होकर हमला करने की, प्रतिरोध करने की, प्रतिक्रांति लाने की अपनी ताकत खोता जाता है। हालांकि ऊपरी ढांचे (super structure) अर्थात वैचारिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में वर्ग संघर्ष और तीव्र व सूक्ष्म रूप अख्तियार कर लेता है। अर्थात लेनिन ने जिस बात को इस रूप में कहा कि सत्ता से हटा दिये जाने के बाद बुर्जुआ वर्ग का हमला दस गुणा बढ़ जाता है, उसका तात्पर्य इसी ढंग से समझना होगा। सोवियत संघ में आर्थिक क्षेत्र में प्रतिक्रांति लाने की ताकत को करीब-करीब नेस्तनाबूद कर दिया गया था। ऐसा विश्वास पूरी दुनिया के लोगों का है और हमारा भी। यहां तक कि जो लोग आज समाजवाद की आलोचना कर रहे हैं, उनका भी ऐसा ही विश्वास है। क्रांति के पक्ष में जो राजनीतिक ताकत है, लोगों के प्रयत्न की जो ताकत है, सांगठनिक व वैचारिक जो ताकत है, उस ताकत के जरिये स्तालिन काल में आर्थिक नियमों को इस समझदारी के आधार पर प्रयोग कर समाजवादी समाज को गठित कर आर्थिक संबंधों में पूंजीवाद के बीज मौजूद रहने के बावजूद उसकी प्रतिरोध करने की ताकत को करीब-करीब निष्क्रिय कर दिया गया था। ऐसा एक समय आ गया था जब सोवियत संघ सोच रहा था कि सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था पर सामाजिक स्वामित्व की स्थापना को पूरा करते हुए एवं पण्य उत्पादन और परिचालन प्रणाली को पूरी तरह से खत्म करते हुए अंदरूनी मामले में कम से कम आर्थिक पहलू से वह वर्गविहीन समाज में जा सकता है। यानी स्तालिन ने जिसे 'साम्यवाद के प्रथम चरण' की संज्ञा दी थी सोवियत संघ को वहां तक पहुंचाने के लिए योजना भी तैयार कर ली गयी थी। ऐसे समय में इतने छोटे से एक छिद्र यानी पूंजीवाद के इस छोटे से बीज की वजह से जो आर्थिक क्षेत्र में एक नकारात्मक पहलू है–जो द्वन्द्व विद्यमान था एवं द्वन्द्व पूरी तरह हल नहीं हुआ था, उससे कितना बड़ा काण्ड हो गया।

सामूहिक फार्मों पर सामाजिक स्वामित्व नहीं है

यहां मैं एक और बात पर जोर देना चाहता हूं। अधिकांश कॉमरेडों की यह धारणा है कि सामूहिक फार्मों (collective farms) पर शायद सामाजिक स्वामित्व है। हालांकि सभी कॉमरेडों के साथ मेरी बात नहीं हुई है, पर इसके पहले की कई चर्चाओं में मैंने देखा है कि कई अग्रणी कॉमरेड भी इस गलतफहमी के शिकार हैं। नहीं, सामूहिक फार्मों पर सामाजिक स्वामित्व नहीं है। सामूहिक फार्म सामाजिक स्वामित्व में जाने का एक संक्रमणकालीन चरण है, दो तरह के स्वामित्व का एक संमिश्रण है, जहां कुछ हद तक समाजवादी स्वामित्व है तथा कुछ हद तक निजी स्वामित्व की धारावाहिकता और अवशेष हैं। स्टेट फार्म (state farms) ही पूरी तरह से सामाजिक स्वामित्व में रूपांतरित हुए हैं। कृषि क्षेत्र में इसके रूपातंरण की प्रक्रिया है–निजी स्वामित्व या निजी खेती (individualfarming) से सहकारी खेती (co-operative farming), सहकारी खेती से सामूहिक खेती (collective farming) और सामूहिक खेती से राजकीय खेती (state farming)। सामूहिक खेती की सिर्फ यही चारित्रिक विशेषता है कि इसमें किसान न तो जमीन के मालिक होते हैं और न ही उन यंत्रों-मशीनों व खाद-बीज के मालिक होते हैं, जिन्हें वे खेती करने, फसलें उगाने या उनकी उपज बढ़ाने में इस्तेमाल करते हैं। परन्तु पैदा की गयी फसल के वे मालिक होते हैं। इसके अलावा कुछ सामूहिक खेतों की अपनी सम्पत्ति होती है–जैसे पॉल्ट्री, पशु धन और इसी तरह की और भी कुछ चीजें। यह उनकी अपनी सम्पत्ति होती है। इसलिए सामूहिक फार्मों पर सामाजिक स्वामित्व नहीं होता है। सोवियत संघ में ये सामूहिक खेती थी, यहां तक कि वहां सभी रिपब्लिकों में सहकारी खेती का अस्तित्व भी पूरी तरह विलुप्त नहीं हुआ था। इसलिए सहकारी खेती को पूरी तरह से सामूहिक खेतों के स्तर पर लाकर, सामूहिक खेती को पूरी तरह से स्टेट फार्मों में तब्दील करने की एक आर्थिक प्रक्रिया लागू करने की बात स्तालिनने कही थी। उन्होंने अपने निधन के पूर्व उन्नीसवीं पार्टी कांग्रेस के ठीक पहले जिस ऐतिहासिक पुस्तक 'सोवियत संघ में समाजवाद की आर्थिक समस्याएं'

('Economic Problems of Socialism in USSR') की रचना की थी, उसमें उन्होंने इस विषय पर विस्तृत चर्चा की थी। इस चर्चा को ही साम्यवाद में जाने का रास्ता या साम्यवाद के पहले चरण में जाने की 'गाइडलाइन' माना गया था। इस चर्चा में स्तालिनने विस्तृत रूप से व्याख्या करके सैद्धांतिक तौर पर दिखाया कि सोवियत संघ की तत्कालीन आर्थिक समस्याएं क्या थीं, उसके द्वन्द्व क्या थे, समाजवादी उत्पादन संबंध जो वहां शुरू में लागू हुआ था—आगे चलकर समाजवादी आर्थिक उत्पादन की तरक्की व विकास में कहां-कहां किस रूप में एक ब्रेक की तरह बाधक बन रहा था। इस दस्तावेज में अगर कहीं थोड़ी-बहुत उन्नीस-बीस भूल-चूक है या पारिभाषिक शब्दावली में तनिक अपर्याप्तता है, तो वह बड़ी बात नहीं है। हमने इस दस्तावेज का समर्थन किया है, इसकी भरपूर प्रशंसा की है और उस समय के सोवियत समाज की आर्थिक व्यवस्था के एक असाधारण और अनूठे विश्लेषण के तौर पर इसका स्वागत किया है।

संशोधनवाद आया क्यों?

अब कोई यदि ऐसा समझ ले कि चूंकि सोवियत संघ में पूंजीवाद के कुछेक बीज रह गये थे, इसलिए अचानक वहां संशोध नवाद आ गया, तो यह एकांगी विचार-विश्लेषण होगा। यह आर्थिक निश्चयतावाद (economic determinism) होगा। इस तरह के विश्लेषण से मार्क्सवाद का अतीत में भारी नुकसान हुआ है और इस तरह का नजरिया बना रहने से आज भी नुकसान होगा। यह सही है कि आर्थिक आधार प्राथमिकता (priority) के तौर पर मूल वस्तुगत स्थिति को प्रतिबिम्बित करता है परन्तु आर्थिक व्यवस्था और समाज का ऊपरी ढांचा अर्थात उसका भाव-जगत इन दोनों की पारस्परिक द्वन्द्वात्मक स्थिति और उनके बीच द्वन्द्व का हमेशा ख्याल रखना होगा। विचार करते वक्त हम वस्तुगत परिस्थिति को प्राथमिक (prior) मानते हैं, इसलिए आर्थिक व्यवस्था को भी आधार मानते हैं। लेकिन बात ऐसी नहीं है कि सिर्फ आर्थिक आधार ही खुद ब खुद सारी चीजों का निर्माण कर देता है। मार्क्सवाद की धारणा ऐसी

नहीं है। समाजवादी उत्पादन प्रक्रिया और उत्पादन संबंध में जितना गुणात्मक परिवर्तन या तरक्की होती रहती है, उत्पादिका शक्ति की वृद्धि और उत्पादन की वितरण प्रणाली में जितनी तरक्की होती रहती है, आम जनता के जीवन-स्तर में उतनी ही वृद्धि होती रहती है, अधिक आय और अल्प आमदनी वाले जन-समूहों के बीच आय का अंतर क्रमशः घटता जाता है—ये सारी प्रक्रियाएं जैसे-जैसे आगे बढ़ेंगी, वे खुद-ब-खुद लोगों के भाव जगत और संस्कृति को भी उन्नत कर देंगी—ऐसा नहीं होता है। यदि ऐसा होता, तो समाजवाद की तरक्की के इस स्तर पर सोवियत नेतृत्व और पूरी पार्टी पांति (rank & file)—अर्थात पूरी पार्टी की चेतना का स्तर भी खुद ब खुद उन्नत हो गया होता। अतएव आर्थिक व्यवस्था में तरक्की होने से ही और वस्तुगत परिस्थिति बदलने से ही साथ ही साथ खुद-ब-खुद बौद्धिक क्षमता (intellectual faculty) बदल जाती है—इस तरह का सिद्धांत मार्क्सवाद में नहीं है। वस्तुगत परिस्थिति ही आधार होती है, इसका मतलब है कि भाव की उत्पत्ति के मामले में वस्तुगत परिस्थिति ही प्राथमिक (prior) होती है। वस्तुगत परिस्थिति नहीं बदलने से या अनुकूल वस्तुगत परिस्थिति न रहने से बौद्धिक क्षमता नहीं आती है। फिर यह भी ख्याल रखना होगा कि वस्तुगत परिस्थिति को पलटने के मामले में भी बौद्धिक क्षमता की एक भूमिका है, क्योंकि वस्तुगत परिस्थिति को भी बौद्धिक क्षमता प्रभावित करती है। यही वजह है कि जैसे-जैसे वस्तुगत परिस्थिति बदलती है, उसके साथ सामंजस्य रखते हुए बौद्धिक क्षमता को उन्नत करने का संघर्ष भी समान रूप से चलाना पड़ता है। वरना उल्टी घटना घट सकती है, जो सोवियत संघ में घटित हुई। जिस सोवियत संघ को समाजवादी आर्थिक व्यवस्था से साम्यवादी आर्थिक व्यवस्था के प्रथम चरण में जाने की बात थी—यानी समाजवादी रूपान्तरण की प्रक्रिया को पूरा करने का कार्यक्रम लेना था, उस ने आज पीछे लौटकर पूंजीवादी इन्सेन्टिव (प्रलोभन) की प्रणाली ला दी, पूंजीवादी प्रवृत्ति और सट्टेबाजी (speculation) का द्वार खोल दिया है, निजी सम्पत्ति और पण्य-परिचालन (commodity circulation) के दायरे को बढ़ा दिया है, निजी स्वामित्व के प्रभाव

को और ज्यादा मात्रा में कायम कर दिया है। उल्टी घटना घट गयी है। यदि ऐसा होता कि वस्तुगत परिस्थिति के अनुसार ही खुद ब खुद बौद्धिक क्षमता उन्नत हो जाती तो समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की इतनी तरक्की होने के बावजूद वहां यह वैचारिक गिरावट, पिछड़ापन, चेतना का निम्न स्तर–जिसे हम दूसरे एक पहलू से संशोधनवाद का मूल कारण कहते हैं–कैसे आ सका? ऐसा इस वजह से हुआ, क्योंकि चिंतन या भाव यहां एक भूमिका अदा करता है और वस्तुगत परिस्थिति पर उसकी एक प्रतिक्रिया होती है। बात ऐसी नहीं है कि आर्थिक परिस्थिति बदलने के साथ-साथ भाव (idea) भी अपने आप बदलता जाता है। भाव (idea) यदि निम्न स्तर का रह जाता है, तो चिंतन का वह निम्न स्तर अवश्य ही द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में परिस्थिति पर क्रिया करता है। नतीजतन यह वस्तुगत परिस्थिति को भी प्रभावित करके इसे पतन की ओर ले जाता है। सोवियत संघ में ऐसी ही घटना घटी है।

यह भी याद रखना चाहिए कि इस संशोधनवाद के आने के पूरक आर्थिक कारक वहां मौजूद थे, इसीलिए वहां संशोधनवाद आ सका। इसके आने लायक आर्थिक कारक यदि समाज में मौजूद न होते, तो यह नहीं आ सकता था। परन्तु मात्र आर्थिक कारकों ने ही खुद-ब-खुद संशोधनवाद नहीं ला दिया। उनमें इसे लाने की ताकत ही वहां मौजूद नहीं थी। राजनैतिक चेतना के निम्न स्तर ने इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया। चेतना का स्तर नीचा रहने के बावजूद जो गंभीर घटना सोवियत संघ में इतने दिनों नहीं घटी, सिर्फ एक खास नेतृत्व की अनुपस्थिति की वजह से अब इतनी बड़ी घटना वहां घट गयी। स्तालिन के नेतृत्व काल में भी चेतना के निम्न स्तर की वजह से अनेक गलतियां हुई हैं। परन्तु वे सोवियत समाजवादी राजनीति और अर्थव्यवस्था की जड़ पर चोट नहीं पहुंचा सकीं। परन्तु उस खास नेतृत्व की अनुपस्थिति के बाद चेतना के निम्न स्तर के चलते उस जड़ पर ही चोट पहुंची, यह संशोधनवादी राजनीति धीरे-धीरे बढ़ती गयी और अन्ततः यह घटना घटी। हालांकि यह बढ़ोतरी चेतना के निम्न स्तर के कारण पकड़ में नहीं आ पायी। इसलिए बात सिर्फ यही नहीं है कि चेतना का स्तर नीचे

गिरते रहने से यह खतरा बढ़ता जाता है, बल्कि चेतना के निम्न स्तर की वजह से एक और भी घटना घटती है। वह यह है कि इस खतरे का बढ़ना भी तब तक पकड़ में नहीं आता जब तक कि वह बढ़ते-बढ़ते 'घोर' वीभत्स रूप लेकर सामने नहीं आ जाता। 'घोर वीभत्स रूप' कहने का मेरा अभिप्राय क्या है? व्यक्तिवाद अपने नारों और गतिविधियों के जरिये इस तरह से सामने नहीं आता है, जिससे कि जिन्होंने पुरानी मार्क्सवादी शब्दावली में क्रांति और क्रांतिकारी सिद्धांतों को समझ रखा है, वे इसे पकड़ सकें। इसलिए जब तक इसका वीभत्स चेहरा इस तरह से उजागर नहीं होता कि आसानी से पहचाना जा सके कि यह संशोधनवाद है, तब तक यह दुनिया के कम्युनिस्टों की भी पकड़ में नहीं आता है। आज हम जो इतनी बातें कह रहे हैं, हम भी इसे कितना पकड़ पाये हैं? हमें अवश्य ही इस बात को स्वीकार करना चाहिए कि हम भी इसे पकड़ नहीं पाये हालांकि हम इस वैचारिक निम्न स्तर को अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में देख चुके थे। लेकिन इसके आधार पर सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी में, यहां तक कि उसकी केन्द्रीय कमेटी में कौन-सी मानसिकता विद्यमान थी, उसका सही अनुमान लगा पाना हमारे वश की बात नहीं थी। जब तक ख्रुश्चेव अपने चेहरे और अपनी अभिव्यक्ति के साथ खुलकर सामने नहीं आये, तब तक हम भी इसे पकड़ नहीं पाये। इससे पहले हमारे लिए समझ पाना बड़ा कठिन था। हम कुछ भी समझ नहीं पाये। लेकिन यह बात सही नहीं है कि हमारी पार्टी ने स्तालिनके शासनकाल में समाजवाद की महान विजय व उसकी अभिव्यक्ति, दूसरों द्वारा किए जा रहे उनके गुणगानों और जय-जयकारों के बीच भी उन्हें एक महान नेता के रूप में चित्रित करने के साथ-साथ उनकी गलतियों-खामियों का जिक्र हमने नहीं किया। कम्युनिस्ट आन्दोलन में व्याप्त यांत्रिक चिंतन प्रक्रिया, चेतना के निम्न स्तर का जिक्र करते हुए लम्बे समय से हम इस संबंध में लोगों को सतर्क करते आये हैं। हमने कहा है कि कम्युनिस्ट आन्दोलन व समाजवादी आर्थिक व्यवस्था की तरक्की हो रही है, विज्ञान एवं तकनीक के क्षेत्र में तरक्की हो रही है, उत्पादन में बढ़ोतरी हो रही है, सोवियत

समाज आर्थिक तौर पर साम्यवाद की ओर बढ़ रहा है, फिर भी इसके साथ ही साथ इसका वैचारिक और सांस्कृतिक स्तर ऊपर उठने की बजाय नीचे गिरता जा रहा है।

नये परिवेश में नई-नई समस्याओं के साथ संगति रखते हुए मार्क्सवाद को उन्नत करना होगा

इसलिए देखा जा रहा है कि चेतना के निम्न स्तर के चलते यह सब हो रहा है और सोवियत संघ में मौजूदा समय में जो घटना घट रही है, उसकी मूल वजह भी यही है। इसे रोकने के लिए एक ओर पार्टी के अंदर निरंतर सांस्कृतिक क्रांति और वैचारिक संघर्ष चलाकर वैचारिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में चेतना का उन्नत स्तर बरकरार रखने की, दूसरी ओर सिर्फ आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि मानव जीवन को केन्द्र कर बदले हुए परिवेश में उभर कर आ रही नयी-नयी समस्याओं का मुकाबला करने के लिए मार्क्सवाद को लगातार समृद्ध करने की जरूरत थी। तत्कालीन समस्याओं को समझ कर एक समय मार्क्सवाद के सिद्धांत विकसित हुए थे, लेकिन क्रांति के बाद बहुत सारी नयी घटनाएं घट चुकी हैं, जिनके बारे में पहले जानकारी नहीं थी। सम्भाव्यता के तर्क के आधार पर कुछ हद तक समझ पाने पर भी, उनके बिल्कुल सटीक रूप और प्रकृति की पहले जानकारी नहीं थी। अत: इन्हें सटीक तौर पर जानने की जरूरत होती है, क्योंकि सारी समस्याओं की प्रकृति को सदा-सदा के लिए कोई भी नहीं जान सकता है। क्रांति के बाद सामाजिक समस्या, मानव जीवन की समस्या, आर्थिक समस्या–इन सभी को केन्द्र करके साम्यवादी आन्दोलन और उसके वैचारिक संघर्ष को कुछ नयी व जटिल परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था। अगर हम सिर्फ पुराने नेतृत्व के उद्धरणों और व्यक्तव्यों में उन समस्याओं का हल ढूंढ़ना चाहें, तो विपत्ति जरूर पैदा होगी ही। सोवियत संघ में जो सब विपत्तियां पैदा हुई हैं, उन के कारणों में यह भी एक कारण है हालांकि यही एकमात्र कारण नहीं है। यह झौंक पंडिताऊ बातें करने वालों एवं 'कोटेशन मोंगरो' की झौंक है जो लोग इससे बाहर और कुछ नहीं देख पाते। वे

उन पुरानी बातों द्वारा ही, अतीत की कोटेशनों के द्वारा ही नयी परिस्थिति पर विचार करते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि अतीत का एक उद्धरण (कोटेशन) एक खास परिस्थिति के खास विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में जब आया था, तब उस उद्धरण की समझदारी जिस स्तर पर थी, इतने दिनों तक आन्दोलन में परीक्षित होने के बाद उसकी समझदारी पहले वाले स्तर जैसी नहीं रह सकती, उस में भी बहुत अंतर आ सकता है। अतएव यहां तक कि उस उद्धरण की समझदारी के संबंध में भी एक आम धारणा निर्मित करनी हो तो, मार्क्सवाद को उन्नत-समृद्ध करना तथा उस सिद्धांत की ध ारणा को भी विकसित करना जरूरी है। वरना यह विपत्ति पैदा होनी लाजमी है। इस विषय को किसी एक व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमता या उसके मनोगत ढंग से विचार करने पर नहीं छोड़ा जा सकता। अर्थात उन्होंने किस तरह तर्क किया या अपने मनोगत ढंग से तर्क (subjective reasoning) करते हुए किस ढंग से समझा इस पर नहीं छोड़ा जा सकता। मार्क्सवाद ऐसा कोई तर्क शास्त्र या तार्किक दर्शन नहीं है, जिसमें किसी भी तर्क के जरिये कोई अपना मनमाना कुछ भी कह दे। क्योंकि ऐसा अक्सर देखा जाता है कि कोई खास तर्क या तर्क करने का ढंग ऊपरी तौर पर खूब तार्किक या तर्क संगत लगने पर भी वास्तव में वह सच्चाई को प्रतिबिम्बित नहीं करता। जबकि सत्यान्वेषण ही मार्क्सवाद की बुनियाद है। इसलिए मार्क्सवादी तर्क एक द्वन्द्वात्मक तर्क है जो द्वन्द्व सिद्धांत के नियम के साथ सामंजस्य रखते हुए तर्क करता है। तर्क-विचार से उपजा कोई भी निष्कर्ष या तर्क-विचार की पद्धति इन नियमों की विरोधी नहीं हो सकती। यद्यपि आम सत्य (general truth) के साथ खास वस्तुगत परिस्थिति से उपजे खास सत्य (particular truth) का द्वन्द्व रह सकता है। यह द्वन्द्व एक-दूसरे का सहायक होता है और कभी भी विरोधात्मक नहीं होता। इस द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में तर्क-विचार को संचालित कर पाने पर ही हमारा चिंतन क्रमशः विकसित होते जाना लाज़िमी है। इसलिए हमें वस्तु या किसी भी परिघटना को निरंतर द्वन्द्व में यानी जिस द्वन्द्व-समन्वय और घात-प्रतिघात के जरिये प्रत्येक घटना घटती है, उस द्वन्द्व में ही उस पर विचार करना चाहिए

उससे अलग करके नहीं क्योंकि किसी वस्तुसत्ता के अस्तित्व का मतलब ही है कि वह हमेशा द्वन्द्व में अस्तित्वमान है।

स्तालिन : एक उदाहरणीय कम्युनिस्ट चरित्र

लेकिन विचार करते वक्त अनेक बार हम इस पहलू पर ध्यान नहीं देते। प्रसंगवश मैं यहां एक अन्य विषय पर कुछ कहना चाहता हूं। संभवत: आप में से बहुत लोग जानते हैं कि सोवियत संघ में स्तालिन के कार्यकाल के संबंध में हमारा एक विश्लेषण है। प्रथमत:, जो लोग स्तालिन के कार्यकाल के गलत कामों की बात, त्रुटियों-खामियों की बात जोर-शोर से उठा रहे हैं, यहां तक कि जो लोग संशोधनवाद के खिलाफ हैं तथा स्तालिन की त्रुटियों-खामियों की बातें करते हैं, वे भी गाड़ी को घोड़े के आगे जोड़ बैठते हैं। यानी जिन कारणों से उनसे गलतियां हुई हैं, उन कारणों में जाये बिना वे उन गलतियों पर विचार कर बैठे हैं अथवा अपने कुछ मनगढ़ंत तर्कों के जरिये वे उन गलतियों पर विचार करने लगते हैं। यहां तक कि इस संबंध में अनेक चर्चाओं के बाद भी मैंने अपने कॉमरेडों की छिट-पुट बातों में इस चीज को देखा है। उनमें भी व्यक्तिपूजा के संबंध में हो या गुरुवाद (Authoritarianism) के संबंध में या फिर अन्य मामलों में हो कुछ-कुछ अस्पष्ट (ambiguous) धारणाएं विद्यमान हैं। उनमें अच्छे-बुरे के संबंध में व्यक्तिगत धारणाएं विद्यमान हैं, जो उनके मनगढ़ंत ढंग से चिंतन करने की प्रवृत्ति को ही उजागर करती हैं। उसी प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के अनुसार वे कभी स्तालिनके किसी काम को बुरा मान रहे हैं, तो कभी चर्चा के दौरान उसी काम को बड़ा महत्वपूर्ण बता रहे हैं। जबकि वे भूल रहे हैं कि इन अवगुणों के मुकाबले उनके गुण बहुत ज्यादा हैं और गुण-अवगुण के बीच गुण की मात्रा अधिक होने के चलते ही कुल मिलाकर वे गुणवान हैं। हमारी पार्टी ने दिखाया है कि उनकी जो कमियां हैं, वे उनकी सामग्रिक सफलताओं के मुकाबले नितांत नगण्य हैं। इसलिए स्तालिनको बदनाम करने की गुंजाइश ही नहीं है। विश्व साम्यवादी आन्दोलन में अति क्षमतावान जबरदस्त अनुकरणीय कम्युनिस्ट चरित्र के रूप में वे अब

भी अपना स्थान रखते हैं। वे आज भी हमारे शिक्षक और नेता हैं। हां, उनमें कुछ दोष के पहलू अवश्य हैं। परन्तु हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जानते हैं कि हर व्यक्ति दोष और गुण, दोनों को लिये हुए ही होता है। इसलिए हम दोष और गुण के पारस्परिक सम्बंध में ही किसी व्यक्ति का मूल्याकंन करते हैं। अगर किसी व्यक्ति को हम दोषमुक्त व्यक्ति कहते हैं, तो हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद को ही नकार देते हैं। हम द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी किसी भी व्यक्ति को दोषमुक्त नहीं समझते। फिर, इस बात से कोई तत्काल यह भी सोच सकता है कि तब तो क्रांतिकारी में भी अवगुण होते होंगे। नहीं, इस तरह से देखने से इस मामले को समझा नहीं जा सकेगा, क्योंकि क्रांतिकारी के गुणों के पहलू उसके अवगुणों के पहलुओं को पूर्णत: अपने अनुरूप पैटर्न करते हैं। फलस्वरूप उसके अवगुण सामने नहीं आ पाते। जब गुणों का अतिक्रमण कर उसके अवगुण आगे आ जाते हैं और उसके गुणों को ढक लेते हैं, तभी मुश्किल होती है, तभी क्रांतिकारी का अध:पतन होता है।

द्वन्द्वात्मक वस्तुवादी मूल्यांकन करते वक्त गुण से शुरू करते हैं, अवगुण से नहीं

क्रांतिकारियों में भी गुण-अवगुण दोनों ही होते हैं। परन्तु क्रांतिकारी अपने चरित्र में निहित गुणों से तथा उन गुणों को क्रमश: विकसित करने के निरंतर संघर्ष के जरिये अवगुणों को गुण के मुताबिक पैटर्न करता है, परिवर्तित करता है। इस प्रसंग में एक और बात पर ध्यान देने की जरूरत है, वह यह कि कोई भी दो व्यक्ति अपने-अपने गुण-अवगुण के साथ दो अलग-अलग सत्ता होते हैं। वे कभी भी हूबहू एक जैसे नहीं होते। ऐसा देखा जाता है कि एक महान व्यक्ति की जो खामियां होती हैं, हो सकता है कि वे ही उसके नीचे के स्तर के किसी व्यक्ति के लिए गुण हों। फिर, इसके विपरीत किसी सापेक्षत: नीचे के स्तर के व्यक्ति के लिए जो गुण होते हैं, हो सकता है कि वे ही किसी महान व्यक्ति के लिए दोष हों। खैर जो भी हो, इस तरह से गुण-अवगुण को लेकर व्यक्ति की जो पूरी संरचना है, उसमें गुण के आधार पर

गुण-अवगुण के द्वन्द्व के बीच विचार करते हुए हम किसी व्यक्ति के गुणों को आंकते हैं और उन गुणों के आधार पर उसका मूल्यांकन करते हैं, क्रिया करते हैं और अन्ततः उसके जरिये अवगुणों को पलट देते हैं। यानी, गुण को लेकर ही हम उसके चरित्र की विस्तृत व्याख्या करते हैं, साथ ही हम उसके अवगुणों को भी नजरअंदाज नहीं करते। क्योंकि यदि हम किसी के गुणों पर चर्चा करना चाहें तो हम कभी भी उसके गुणों पर सही तौर पर विचार कर ही नहीं सकते, यदि हम उसके अवगुणों के साथ द्वन्द्व के परिप्रेक्ष्य में गुणों पर विचार न करें। नतीजतन गुणों पर चर्चा करने के क्रम में ही अवगुण भी अपने आप सामने आ जाते हैं। इसलिए अवगुणों को अलग से ढूंढ़ने की जरूरत नहीं होती है। यही वजह है कि द्वन्द्वात्मक भौतिकवादियों को गुण से आरंभ करना चाहिए। नहीं तो क्रिया का कोई उद्देश्य नहीं रहता, वह उद्देश्य से भटक जाती है। जबकि ज्यादातर कॉमरेडों को दूसरों के संबंध में चर्चा करते वक्त मैं देखता हूं कि अवगुण के पहलू को लेकर चर्चा करने की प्रवृत्ति उनमें ज्यादा होती है। हम गुण के पहलू को नहीं देखते। यदि हम गुण के पहलू को न देखें, तो अवगुण के पहलू पर चर्चा करने के साथ ही हमें ध्यान आ जाना चाहिए कि हमारी चर्चा उद्देश्यहीन हो जायेगी। ऐसे में आलोचना करने का हमारा कोई अधिकार नहीं है। जो लोग उद्देश्यहीन चर्चा करते हैं, बातें बनाना ही जिनका काम है, दूसरों की आलोचना करने में ही जिनको संतुष्टि मिलती है, दूसरों को छोटा दिखाने में जिन्हें खुशी होती है, दूसरों की त्रुटियों को दिखाने में जो अपनी बहादुरी समझते हैं, परोक्ष रूप से अपने को थोड़ा बड़ा साबित करना चाहते हैं, सिर्फ वे ही अवगुण के आधार पर व्यक्ति का मूल्यांकन करते हैं, वे सिर्फ अवगुण की ही चर्चा करते हैं। सिर्फ अवगुण को आधार मानकर चर्चा करने की क्या जरूरत है? क्या यह दिखाकर हम आनंदित होना चाहते हैं कि दूसरा व्यक्ति कितना मूर्ख है? या कि हम यह दर्शाना चाहते हैं कि हम कितने ज्ञानी हैं? यदि ऐसा नहीं है, तो फिर क्यों हम दूसरों के अवगुणों की चर्चा कर रहे हैं? यदि दूसरों के अवगुणों को दूर करना हमारी चर्चा का मकसद है, तो हमें याद

रखना चाहिए कि यदि हम गुण से आरंभ नहीं करेंगे तो सिर्फ अवगुणों की चर्चा करते हुए उन्हें दूर नहीं किया जा सकेगा। यदि हम किसी के गुणों को बढ़ाने का प्रयास करें, तभी हम उसके अवगुणों को दूर कर सकते हैं। इसलिए हम हमेशा किसी व्यक्ति के गुण को महत्व देते हैं, उसके अवगुण से आरंभ नहीं करते। ऐसा करने पर उसके अवगुणों को लेकर हमारी चर्चा की कोई सार्थकता नहीं रहती।

इस विषय पर मैंने इसलिए चर्चा की कि चर्चा के दौरान कॉमरेडों में यह प्रवृत्ति अक्सर देखी जाती है। जब कभी किसी कॉमरेड का दूसरे कॉमरेड के साथ कुछ मनमुटाव होता है या जब वह कहीं उसकी त्रुटि देखता है, तो यह संतुलन नहीं रख पाता कि वह त्रुटि कितनी भी गंभीर क्यों न प्रतीत हो, वह त्रुटि ही उसमें ज्यादा है या कि उसके गुण के पहलू ज्यादा हैं। यानी उसमें गुण के पहलू कितने हैं, अवगुण के पहलू कितने हैं–विचार करने के मामले में कम से कम यह अनुपातिक धारणा तो रहनी ही चाहिए। त्रुटियों पर विचार करते वक्त इस बात का ध्यान रखना होगा कि जब हम किसी की त्रुटियों पर बल दे रहे हैं, तो उसके गुण भी दिमाग में रहें। नहीं तो, त्रुटि छोटी हो या बड़ी, हमारी चर्चा का उद्देश्य व्यर्थ हो जाता है। इसलिए उद्देश्य को सामने रखकर गुण-अवगुण के पारस्परिक द्वन्द्वात्मक संबंध के आधार पर यदि हम विचार न करें तो किसी भी चीज को हम सही तरीके से नहीं समझ सकते हैं। मेरी इस बात का तात्पर्य आज की चर्चा में भी आगे चलकर आप पायेंगे। सोवियत संघ की भूमिका के संबंध में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी जो कह रही है और जो अब अपनी चर्चा में मैं कहूंगा, मैं समझता हूं मूलतः दोनों बातें एक ही हैं। लेकिन कहने की शैली में अंतर रहेगा। यह जो अंतर है, यह बिल्कुल यहीं से, इसी अप्रोच से आ रहा है, और कहीं से नहीं। यानी आलोचना के दौरान चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की एकतरफा झोंक काम कर रही है, जिस झोंक की वजह से सोवियत संघ में जो तनिक भी गुण के पहलू विद्यमान हैं, उन पर भी उनकी बिल्कुल ही नजर नहीं पड़ रही है जबकि हम उनके गुणों को भी देख रहे हैं।

हो सकता है कि हम गलत देख रहे हों। यदि कोई हमारे चिंतन में गलती दिखा दे, तो हम उस पर पुनर्विचार करेंगे। परन्तु मुझे लगता है कि थोड़ा-सा सकारात्मक पहलू है जिस पर ध्यान नहीं देने से गलती हो जायेगी। लेकिन ऐसा करने के लिए इन झुकावों व प्रवृत्तियों से मुक्त रहना होगा। वरना हमारी आलोचना का उद्देश्य नष्ट हो जायेगा, हमारी चर्चा अपने उद्देश्य से भटक जायेगी।

स्तालिन के निधन के उपरांत सोवियत संघ में ख्रुश्चेव जिन आर्थिक नीतियों को लाये उनके संबंध में किसी गंभीर चर्चा में जाना आज संभव नहीं है। परन्तु मैंने पहले ही कहा है कि सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी संबंध या व्यक्तिगत सम्पत्ति बिल्कुल भग्नावशेष के स्तर में थी, वह अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषता नहीं थी। उसकी बाधा डालने की क्षमता या एक प्रमुख ताकत के तौर पर स्वयं की राजनैतिक शक्ति को संगठित कर सामने आ जाने की कोई क्षमता उसमें नहीं थी। आर्थिक तौर पर सोवियत संघ पूरी तरह से सामाजिक स्वामित्व में तब्दील होने के प्रवेशद्वार पर पहुंच चुका था। यानी जितनी भी व्यक्तिगत स्वामित्व वाली खेती और सामूहिक खेती प्रणाली थी, वह सामाजिक स्वामित्व में तब्दील होने की स्थिति में आ गयी थी। ऐसी स्थिति में आ जाने वाला देश इस तरह से संशोधनवाद का शिकार हो गया। ऐसा नहीं होता तो वे स्तालिन के कार्यकाल की विशाल उपलब्धियों तथा कुछ त्रुटियों-खामियों पर विचार करने, उनका सटीक मूल्यांकन करने में सक्षम होते। ऐसा न कर पाने की वजह से, इसका फायदा उठाकर संशोधनवाद आ गया। उन्होंने शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की नीति को शांतिपूर्ण आत्म-समर्पण (capitulation) की नीति में तब्दील कर दिया। इस युग में युद्ध और शांति की जो नीति मार्क्सवादियों के लिए संघर्ष का एक अमोघ हथियार है, उसे उन्होंने शांतिवादिता की बुर्जुआ मानवतावादी कपोल कल्पना में परिणत कर दिया। वह नीति एक काल्पनिक आदर्श और यूटोपिया बन गयी, जो आम जनता को ठग रही है, पूंजीवादी दुनिया के अधिकांश अचेत लोगों की तालियां-वाहवाही बटोर रही है और प्रतिक्रियावादियों को खुश कर रही है क्योंकि प्रतिक्रियावादी अपना वर्गहित समझने में अत्यंत सचेत हैं। वे सोवियत संघ की इस नीति में अपना हित

बखूबी देखते हैं तथा इससे होने वाले अपने फायदे का सही आंकलन कर लेते हैं। सोवियत संघ इस नीति का अनुसरण करे, इसके लिए पर्दे के पीछे से प्रतिक्रियावादी तरह-तरह के हथकंडे अपना रहे हैं। और, जो आम लोग हैं, जो जागरूक नहीं हैं, जो क्रांति के जटिल व सूक्ष्म रूप को समझ नहीं पाते हैं, वे आम तौर पर क्रांति चाहते हैं–परन्तु उनमें उदारतावाद, जनतंत्र, व्यक्ति की आजादी, व्यक्ति की मुक्ति आदि के संबंध में तरह-तरह की धारणाएं जटिलताओं का जाल मौजूद है। वे विभिन्न तरह से बहुत सारी तथाकथित उदारतावादी बुर्जुआ, पेटी बुर्जुआ धारणाओं के शिकार बने हुए हैं। इन सब जटिल विषयों को समझ सकें, ऐसी क्षमता उनमें है ही नहीं। यहां तक कि ऐसे बहुत सारे लोग जो क्रांतिकारी आन्दोलन में शामिल हैं, पर वे खुद ही अहंकार और व्यक्तिवाद के शिकार बने हुए हैं।

एक क्रांतिकारी भी व्यक्तिवाद का शिकार बन सकता है

आप लोग याद रखिएगा, एक क्रांतिकारी फील्ड में संघर्ष कर रहा है, मजदूरों-किसानों के बीच काम कर रहा है–फिर भी वह खुद अहं, उदारतावाद तथा उग्र जनतंत्र का पूरी तरह शिकार है–ऐसा हमेशा ही संभव भी है और हो भी रहा है। चूंकि वह क्रांति में विश्वास रखता है, मजदूर वर्ग के आन्दोलन में शामिल है, कम्युनिस्ट पार्टी का सदस्य है, इसलिए वह बुर्जुआ विचारधारा के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त है–ऐसा सोचने की कोई वजह नहीं है। आप अक्सर हमारे बीच ऐसे कॉमरेडों को पायेंगे, जो हैं तो अच्छे कॉमरेड, पर वे हमेशा एक तुलनात्मक चर्चा करते हैं–यह व्यक्ति अच्छा है कि वह व्यक्ति अच्छा है, मैं बड़ा हूं कि वह बड़ा है, यह व्यक्ति बड़ा है कि वह व्यक्ति बड़ा है। वे ऐसा करने में यह तर्क भी देते हैं कि यह अपने को बड़ा समझने के लिए या दूसरों को छोटा करने के लिए नहीं है। वे किसी को छोटा भी नहीं करना चाहते, किसी को बड़ा भी करना नहीं चाहते–सटीक विचार के लिए इसकी जरूरत है। जबकि विचार करने पर देखा जायेगा कि ये बड़ी-बड़ी बातें, प्रगति की बातें एक आवरण मात्र हैं। इसके जरिये वास्तव में वे कौन-सी मानसिकता प्रतिबिम्बित कर रहे हैं? वे नहीं जानते कि पूंजीवाद की बेरोक-टोक

प्रतियोगिता, हर किसी में स्वयं को टिकाये रखने (survival) तथा दूसरों को पीछे धकेल कर आगे बढ़ने की आकांक्षा यानी छिपा (latent) व्यक्तिवाद और अहंकार बोध ही उन्हें इस मार्ग पर ले जाता है। परन्तु इसे वे प्रगतिशीलता का जामा पहनाते हैं। नतीजतन जब वे पार्टी माहौल के प्रभाव में आकर दूसरों की प्रशंसा में चर्चा करते हैं, तब भी वह चर्चा यांत्रिक (mechanical) हो जाती है। अथवा वे प्रगतिशीलता और जनतंत्र की दुहाई देकर सामूहिक नेतृत्व के नाम पर व्यक्ति की भूमिका की उपयुक्त स्वीकृति की जरूरत तक को नकार बैठते हैं, वे इस पर चुप्पी साध लेते हैं। ये तमाम चीजें क्या साबित करती हैं? ये साबित करती हैं कि आदमी क्रांति का सिद्धांत जानते हुए भी, क्रांति का सपना देखते हुए भी तथा ईमानदार रहते हुए भी कितने सूक्ष्म रूप से बुर्जुआ, पेटी बुर्जुआ उदारतावादी विचारधारा का शिकार बन जाता है।

इस संबंध में मैं बहुत सारे उदाहरण दे सकता हूं। परन्तु इस पर यहां विस्तृत चर्चा करने की मौका नहीं है। मैं सिर्फ एक उदाहरण दूंगा। आप ऐसे अनेक नेताओं को पायेंगे, जो बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, परन्तु बहुत सारी व्यक्तिगत चीजों को वे छोड़ नहीं पाये हैं। इस संबंध में पूछने पर वे कहते हैं, चूंकि पार्टी ने उन्हें छोड़ने के लिए नहीं कहा है, इसलिए उन्होंने नहीं छोड़ा है। बात ऐसी नहीं है कि हमारे बीच ऐसा कोई भी नहीं है, जो नेता तो बनना चाहता है, परंतु ऐसी सोच रखता है। मैं कोई चीज छिपाना पसंद नहीं करता हूं। लेकिन मैं एक बात नहीं समझता कि पार्टी उन्हें ये सब छोड़ने के लिए कहेगी ही क्यों? यदि वे समझते हैं कि यह रुचि सम्मत नहीं है, यह अनैतिक (unethical) है, यह एक विशेष सुविधा (privilege) है, यह अन्याय है, वे जो कहते हैं और जो करते हैं, वह सामंजस्यपूर्ण नहीं है, तो उन्हें छोड़ने के लिए दूसरे कहेंगे, इसका वे इंतजार ही क्यों करेंगे? वे स्वेच्छा से छोड़ देंगे, बल्कि वे तभी लेंगे जब पार्टी कहेगी कि उनका छोड़ना चाहने के बावजूद पार्टी की ज़रूरत के लिए ही उनको लेना चाहिए। लेकिन, उन लोगों ने खुद क्यों नहीं छोड़ा? इस तरह का सवाल करने पर वे कहते हैं, वे तो छोड़ ही सकते हैं; पार्टी के कहने से ही वे छोड़ देंगे। यह सही है कि कहने से ही वे

छोड़ देंगे, लेकिन देखा जायेगा कि छोड़ देने के बाद कहीं अगर और किसी दूसरे ने छोड़ा न हो, तो वे उसके पीछे पड़कर उसे बेइज्जत करके ही छोड़ेंगे। उसकी थोड़ी भी सुविधा को वे बर्दाश्त नहीं कर पायेंगे। ये सब बातें क्या साबित करती हैं? ये बातें साबित करती हैं कि कम्युनिस्ट आदर्श अपनाने और क्रांतिकारी आन्दोलनों में शामिल रहने के बावजूद उन पर बुर्जुआ व्यक्तिवाद और अहंकार बोध का प्रभाव बना हुआ है और उच्च स्तर के व्यक्ति में भी ये सारी चीजें बड़े ही सूक्ष्म रूप में मौजूद रहती हैं। परन्तु, क्या ये चीजें मौजूद रहने से ही यह साबित हो जाता है कि वे क्रांतिकारी नहीं रहे? या, यदि वे क्रांतिकारी हैं, तो उनमें ये चीजें हैं क्यों? हां, ये उनके अवगुण के पहलू हैं। परन्तु क्या हम सिर्फ उनके अवगुण के पहलू को ही देख रहे हैं? नहीं, हम उनके गुण के पहलू को भी देखते हैं। यही वजह है कि इस गुण के पहलू से जब तक यह उम्मीद है कि वे क्रांतिकारी हैं और एक क्रांतिकारी के तौर पर वे अपनी भूमिका का निर्वाह करेंगे, तब तक इस अवगुण के पहलू को पूरी तरह से दूर नहीं कर पाने के बावजूद इसे दूर करने के संघर्ष को बरकरार रखते हुए, उनके गुण के पहलू को हम प्रोत्साहित करते हैं और उसके आधार पर हम उनका मूल्यांकन करते हैं। परन्तु उनके गुणों को जब हम प्रोत्साहित करते हैं, तब क्या हम उनके अवगुणों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं? मेरी इस बात से यह साबित होता है कि हम इस पर खूब ध्यान दे रहे हैं। कभी अगर ऐसा देखा जाता है कि किसी के इस अवगुण के पहलू ने ही प्रधान बनकर उसके गुणों को बर्बाद कर दिया है, उसके खिलाफ खुल्लमखुल्ला कार्रवाई करने के अलावा हमारे पास और कोई चारा नहीं रहता। किन्तु इस तरह की चीजें मौजूद हैं।

साम्यवादी आन्दोलन में बुर्जुआ उदारतावाद कीघुसपैठ का कारण

अत:, देखा जा रहा है कि क्रांतिकारी आन्दोलन में रहते हुए भी अनेक लोग तरह-तरह की बुर्जुआ विचारधाराओं के शिकार बने रहते हैं। मौजूदा समय में साम्यवादी आन्दोलन में आम तौर पर चेतना के स्तर में गिरावट की वजह से इस पेटी बुर्जुआ, बुर्जुआ

उदारतावादी विचारधारा के प्रभाव ने क्रांतिकारी आन्दोलन में विकराल रूप अख्तियार कर लिया है। स्वाभाविक है कि सोवियत नेतृत्व ने जब यह संशोधनवादी रास्ता अपनाया, युद्ध व शांति के संबंध में संशोधनवादी सिद्धांत अपनाया और शांतिपूर्ण सह अस्तित्व की नीति को व्यवहारतः शांतिपूर्ण आत्मसमर्पण की नीति में तब्दील कर दिया, तब पूंजीवादी और समाजवादी देशों में बहुत सारे क्रांतिकारियों ने, जो वास्तव में क्रांति में विश्वास रखते हैं, इसे क्रांतिकारी सिद्धांत के रूप में अपना लिया। उन सभी ने बेईमानी से और जानबूझकर इसका समर्थन किया, बात ऐसी नहीं है। यदि ऐसी बात होती तो जिन तमाम कम्युनिस्ट पार्टियों का नेतृत्व अफसरशाह (bureaucratic) बन गया है, जिन लोगों ने नेतृत्व को विशेष सुविधा में तब्दील कर लिया है, उन तमाम कम्युनिस्ट पार्टियों या संशोध नवादी पार्टियों में क्या ऐसे छात्र-युवा या आम कार्यकर्ता नहीं हैं जो क्रांति के लिए दिन-रात काम कर रहे हैं, निस्वार्थ होकर काम कर रहे हैं? तब उन्होंने इस संशोधनवादी लाइन को क्रांतिकारी मानकर कैसे अपना लिया है? संशोधनवाद को वे पकड़ क्यों नहीं पा रहे हैं? सभी कहेंगे, इसकी वजह है उनकी सैद्धांतिक समझदारी का निम्न स्तर। बात तो ठीक ही है। परन्तु उनकी सैद्धांतिक समझदारी के स्तर में गिरावट आने का कारण क्या है? कोई अगर ऐसा समझे कि उन लोगों ने लेनिन-स्तालिन की कुछ बातों को कंठस्थ नहीं किया है और इसी वजह से वे इसे पकड़ नहीं पा रहे हैं, तो गलती होगी। क्योंकि उन सीखों को चीन की कम्युनिस्ट पार्टी उनके समक्ष बड़ी ही गर्मजोशी के साथ यथावत पेश करती आ रही है और हम लोग भी, लेकिन बावजूद इसके ये सीखें उन्हें बहुत ज्यादा आकृष्ट नहीं कर पा रही हैं। क्योंकि उनकी चेतना का स्तर नीचा रहने की वजह से बहुत से पेटी बुर्जुआ-बुर्जुआ उदारतावादी विचारों और आदर्शों के प्रति उनमें सतही तौर पर आकर्षण मौजूद है। जैसे, चेकोस्लोवाकिया में जो घटना घटी है, उसके बहुत सारे पहलुओं का जहां कुछ लोगों ने धूर्ततापूर्वक स्वागत किया है, वहीं कई डेमोक्रेटों तथा अनेकों आम लोगों ने भी इसका समर्थन किया है। उन सभी ने धूर्ततापूर्वक इसका स्वागत किया है—बात ऐसी नहीं है।

इस तरह का विश्लेषण सही नहीं है। उनमें से अनेकों ने सोचा है कि व्यक्ति स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करने की जो बात कही जा रही है, वह सही है। वही होना चाहिए। ऐसा होने से ही आम लोगों में कम्युनिज्म के संबंध में जो थोड़ा-सा संशय है अथवा उनमें भी था, वह नहीं रहेगा। यह सोचकर लोगों के एक तबके ने इन चीजों का स्वागत किया है। क्योंकि चेकोस्लोवाकिया में जो बातें उभर कर आईं हैं, उन के पीछे वर्ग-आकांक्षा क्या है, यह वास्तव में क्या चीज है और इससे क्या प्रतिबिम्बित होता है–इस पर विचार करने की क्षमता उनमें नहीं है, चेतना का वह स्तर उनमें नहीं है। इसलिए वे इस मामले को इस तरह से देख रहे हैं।

मजदूर वर्ग के आर्थिक आन्दोलनों से ही साम्यवादी चेतना अपने आप नहीं आ जाती

तो, क्या देखा जा रहा है? क्रांतिकारी आन्दोलन, मजदूर आन्दोलन में शामिल रहना ही काफी नहीं है। इन आन्दोलनों के उद्देश्य या लक्ष्य के संबंध में स्पष्ट धारणा रहनी चाहिए। हम जिन आन्दोलनों को संगठित कर रहे हैं, लड़ रहे हैं, इन आन्दोलनों में राजनैतिक नारे लगा रहे हैं–यह सब किसलिए? इनका मकसद है सर्वहारा की राजनीति को उभारना। परन्तु क्या सिर्फ आन्दोलन करने से ही, लड़ने से ही अपने आप इसके अंदर से सर्वहारा वर्ग की राजनीति का जन्म हो जायेगा? संघर्ष के बीच से ही तमाम चीजें पैदा होती हैं–इसका मतलब यह नहीं है कि एक तरह के संघर्ष से ही तमाम तरह की चीजें पैदा हो जाती हैं। अतः सर्वहारा वर्ग की राजनीति निर्मित करने का भी एक अलग निर्दिष्ट संघर्ष है। यह रोजाना के जनवादी आन्दोलनों से स्वतः निर्मित नहीं हो जाती। इसलिए लेनिन ने कहा है, समाजवाद बाहर से आता है (Socialism comes from without)। इस विदआउट कहने का मतलब विदआउट एनीथिंग या आउट ऑफ नथिंग नहीं है। इस बाहर (without) कहने से उन्होंने एक खास ढंग के आन्दोलन, यानी राजनैतिक, वैचारिक व सांस्कृतिक आन्दोलन को समझना चाहा था। अर्थात आर्थिक मांगों के आधार पर जो मजदूर आन्दोलन, स्वतःस्फूर्त आन्दोलन निर्मित

होता है, उसी के साथ जोड़कर उन्होंने कहा है कि वहां जो संघर्ष मजदूर करते हैं, उसी संघर्ष के क्रम में उनमें अपने आप समाजवादी चेतना, समाजवादी विचारधारा व सर्वहारा अधिनायकत्व या जनवादी केन्द्रीयता की धारणा पैदा हो जायेगी–यह एक कपोल कल्पना है। ऐसा कभी नहीं होगा। यह चेतना आती है बाहर से। यानी यह एक बिल्कुल भिन्न संघर्ष है। जैसे विज्ञान में वैज्ञानिक सिद्धांतों के आविष्कार का जो संघर्ष है और सिद्धांत को प्रयोग कर यंत्र बनाने का जो संघर्ष है–ये दोनों ही विज्ञान के संघर्ष हैं और दोनों ही व्यवहार (practice) हैं। परन्तु दोनों का कार्य क्षेत्र अलग-अलग है। पहले में प्रयोगशाला में परीक्षण-निरीक्षण-अनुसधान के जरिये सिद्धांत तैयार हो रहा है। किन चीजों को लेकर वैज्ञानिक प्रयोगशाला में अनुसंधान कर रहे हैं? वे अनुसंधान कर रहे हैं पदार्थ (matter) को लेकर, तत्वों (elements) को लेकर, उनके गुणों (properties) को लेकर। उनके साथ वैज्ञानिक सीधे तौर पर संपर्क में हैं। उनके साथ संघर्ष में हैं। इस अनुसंधान में वे कभी-कभी अपनी जान तक को जोखिम में डाल रहे हैं। और दूसरे संघर्ष में, इन सिद्धांतों का प्रयोग कर तरह-तरह के यंत्रों का अविष्कार किया जा रहा है, उत्पादन की तरक्की होती जा रही है, लोगों का जीवन-स्तर उन्नत होता जा रहा है।

लेकिन नेताओं के एक तबके के लिए संघर्ष का मतलब सिर्फ एक ही तरह के संघर्ष से है। वे नेता, जिन्होंने नेतृत्व को सुविधा में तब्दील कर दिया है, कार्यकर्ताओं की लगनशील और संघर्षशील मानसिकता पर निर्भर करते हुए उन्हें सिर्फ उस खास तरह के संघर्ष के लिए युक्तिरहित ढंग से प्रोत्साहित कर रहे हैं। वे कार्यकर्ताओं के समक्ष किसान-मजदूरों को लेकर संघर्ष करने का नारा दे रहे हैं और वह नारा वे ऊपर से तैयार करके दे रहे हैं। परन्तु जिस आदर्श की बुनियाद पर यह संघर्ष निर्मित होगा, वह आदर्श, वह सिद्धांत सही है या नहीं–उसकी समझदारी हासिल करने का संघर्ष कहां है? क्या वह इन संघर्षों से अपने-आप निर्मित हो जायेगा? या कि उस सिद्धांत को निर्मित करने के पहले भी एक संघर्ष है? उस संघर्ष से जिस तरह सिद्धांत निर्मित होता है, उसी

तरह सिद्धांत को वास्तव में प्रयोग करने का संघर्ष चलता रहता है। फिर सिद्धांत को प्रयोग करने के संघर्ष के जरिये जैसे-जैसे तजुर्बा हासिल होता जाता है, उस तजुर्बे से फिर उस सिद्धांत को उन्नत करने या परिवर्तित करने का संघर्ष निर्मित होता रहता है, तेज होता रहता है और इस तरह से सिद्धांत की धारणा भी स्पष्ट से स्पष्टतर होती रहती है। तो, मूल सिद्धांत सही है या नहीं, इसी पर सबसे पहले विचार करना होगा। और यही मूल सवाल है। जिसे हम व्यवहार (practice) कहते हैं, यानी जिसे हम आम तौर पर सिद्धांत से अलग कर वास्तविक व्यवहार (objective practice) या स्थूल व्यवहार (crude practice) कह सकते हैं, उसके पहले सिद्धांत पर विचार करने का सवाल मौलिक सवाल है। इस संबंध में लेनिन और स्तालिन दोनों के वक्तव्य हैं, पर अलग-अलग ढंग से हैं। लेनिन ने कहा है, बगैर क्रांतिकारी सिद्धांत के क्रांतिकारी पार्टी नहीं बन सकती। और, स्तालिन ने कहा है, कोई व्यवहार यदि क्रांतिकारी सिद्धांत से विलग हो यानी वह क्रांतिकारी सिद्धांत पर निर्मित न हो, तो वह व्यवहार अंधा व्यवहार (blind practice) है। फिर, सिद्धांत का संघर्ष यदि व्यवहार से विलग हो, यानी यदि हमेशा उसे प्रयोग में न लाया जाय या उसे कार्यान्वित न किया जाये, उस सिद्धांत के प्रति यदि जनता को प्रेरित न किया जाए तो वह बांझ है। अर्थात किसी सिद्धांत को निर्मित करने या विकसित करने का संघर्ष यदि उस सिद्धांत को काम में लगाने के संघर्ष से भटक जाये, तो वह सिद्धांत भी बांझ हो जाता है।

लेनिनोत्तर काल में सोवियत संघ में वैचारिक संघर्ष की अवहेलना की गयी

इन बातों की चर्चा मैंने इसलिए की कि सोवियत संघ में आर्थिक क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि के संघर्ष, तकनीकी क्षेत्र में तरक्की लाने के संघर्ष पर जितना बल दिया गया, वैचारिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में तरक्की लाने के संघर्ष पर उतना बल तो दिया ही नहीं गया, बल्कि उसकी अवहेलना भी हुई है। नतीजतन आर्थिक क्षेत्र में जो पूंजीवाद करीब-करीब विलुप्त हो जाने की स्थिति में आ

पहुंचा था, उसकी बाधा डालने की ताकत या एक मुख्य ताकत के तौर पर स्वयं की राजनैतिक शक्ति को संगठित कर आगे आ जाने की ताकत उसमें नहीं रह गयी थी। मैंने हमेशा यह दिखाने का प्रयास किया है कि इस गिरावट के पीछे वहां के राजनैतिक नेतृत्व की भूमिका ही मुख्य रूप से जिम्मेवार है। मैंने दिखाना चाहा है कि यह जो सोवियत संघ में हो गया ऐसा होना आर्थिक निश्चयतावाद नहीं है। हालांकि जो लोग अपने को मार्क्सवादी कहते हैं, जो यह कहते हैं कि हम आर्थिक निश्चयतावाद में विश्वास नहीं रखते, वे यह सब कहने के बावजूद तमाम बातों में महज यांत्रिक तौर पर दिखाना चाहते हैं कि यदि उसका आर्थिक आधार ऐसा नहीं था, तो उसके वैचारिक स्तर में गिरावट कैसे आ सकी? आर्थिक स्थिति और वैचारिक स्तर के बीच के द्वन्द्व का सटीक तौर पर विश्लेषण कर आर्थिक विकास, उसके रूपान्तरण तथा चरित्र में आये बदलाव के साथ सामंजस्य रखते हुए यदि उसके पूरक एक और वैचारिक संघर्ष की शुरुआत साथ-साथ न की जाय, तो ऐसा नहीं है कि महज उत्पादन को पैटर्न कर देने के चलते ही उसके जरिये वैचारिक संघर्ष भी स्वत: निर्मित हो जाता है। इसके लिए प्रयास और पहल की जरूरत होती है। वस्तु स्थिति के आधार पर अवश्यंभावी तौर पर बौद्धिक क्षमता (intellectual faculty) का निर्माण होता है–मार्क्स के इस कथन की समझदारी इस तरह की यांत्रिक समझदारी नहीं है। इस तरह की धारणा की वजह से बड़े-बड़े पंडित इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि मार्क्सवाद आर्थिक निश्चयतावाद है। नहीं, मार्क्सवाद आर्थिक निश्चयतावाद नहीं है। चूंकि मार्क्सवाद भाव (idea) की उत्पत्ति के मामले में वास्तविक परिस्थिति को प्राथमिक (prior) मानता है, इसलिए आर्थिक स्थिति के विचार-विश्लेषण को अत्यंत और मुख्य महत्व देता है। परन्तु वह हर स्थिति में हर वक्त उसे मुख्य महत्व नहीं देता। यदि ऐसी बात होती, तो अक्तूबर क्रांति समाजवादी क्रांति नहीं होती। आर्थिक स्थिति और कृषि व्यवस्था बुर्जुआ जनवादी क्रांति के स्तर में रहने के बावजूद लेनिन राजनैतिक तौर पर समाजवादी क्रांति का निर्णय नहीं ले पाते,

'अप्रैल थीसिस' नहीं ग्रहण कर पाते। कभी भी कोई भी सही मार्क्सवादी ऐसा नहीं करता। मैंने इसकी चर्चा इसलिए की कि ऐसा होता है।

यदि इन विषयों पर समझदारी साफ होती, तो चेकोस्लोवाकिया की समस्या को केन्द्र कर जो सवाल आये हैं, बहुत सारे कॉमरेड बहुत ही संक्षेप में उनका लगभग जवाब दे पाते। मैंने पहले ही कहा है कि यह विषय इतना कोई खास महत्वपूर्ण नहीं है। सिर्फ एक बिन्दु महत्वपूर्ण था, जिस पर चीन की समझ (approach) और हमारी समझ (approach) में भिन्नता है। दूसरा कोई खास महत्वपूर्ण बिन्दु इसमें नहीं था। बहुत सारे कॉमरेडों के प्रश्नों की प्रकृति पर मैंने गौर किया है, उन्हें समझना चाहिए कि अगर हम अलग से चेकोस्लोवाकिया की घटना को लेकर उसके तथ्यों और घटनाओं पर विचार करें, तो हम सिर्फ बहक जायेंगे (be carried away)। इस पर विचार करते वक्त यह समझना होगा कि कुछ निर्दिष्ट नीतियों के अनुसरण के फलस्वरूप यह आया है। इसकी एक मूल वजह (root cause) है। जिस वजह से चेकोस्लोवाकिया की मौजूदा घटना की उत्पत्ति हुई है, उस वजह को यदि हम समझ पायें, तो समस्या स्पष्ट हो जायेगी। तब इसको लेकर माथापच्ची करने की कोई खास जरूरत नहीं रह जायेगी। इसके बाद एक बिन्दु रह जाता है, जो महत्वपूर्ण है, जिस बिन्दु पर अब भी थोड़ी-बहुत गलतफहमी रह सकती है, वह यह कि सोवियत संघ का हस्तक्षेप सही था या नहीं। परन्तु यह घटना क्यों हुई, उसे समझने के संबंध में और कोई गलतफहमी नहीं रह पाती और इसको लेकर जो सवाल आये हैं, वे उस ढंग से नहीं आते। ये सवाल इसलिए आये हैं कि सोवियत संघ में संशोधनवाद का जन्म क्यों हुआ, उसके पीछे के कारण क्या थे–उसके तमाम बिन्दुओं को कॉमरेड खूब अच्छी तरह से समझ नहीं पाये हैं। वे कहते हैं कि संशोधनवाद आया है, लेकिन संशोधनवाद क्यों आया है, उसके कारणों को वे सही तरह से नहीं समझ पाये हैं।

अत: सोवियत संघ में सामाजिक मानसिकता में और आर्थिक क्षेत्र में भी पूंजीवाद के बीज मौजूद थे। लेकिन अर्थव्यवस्था में

पूंजीवाद के उपादान मौजूद रहने के चलते ही वहां संशोधनवाद आ गया–बात ऐसी नहीं है। आप लोगों को याद रखना चाहिए कि वहां संशोधनवाद आया है ऐसी एक पार्टी के जरिये जिस पार्टी का एक गौरवपूर्ण इतिहास रहा है, जिस पार्टी ने सामूहिक और विशेषीकृत नेतृत्व की अभिव्यक्ति के तौर पर स्तालिन जैसे एक व्यक्ति नेतृत्व को सामने रखकर काम किया है। इस पार्टी में इतना बड़ा ताकतवर नेतृत्व मौजूद रहने के बावजूद यह घटना घटी है। हमेशा सामूहिक नेतृत्व के तौर पर लेनिन-स्तालिन, माओ त्से-तुंग जैसे व्यक्ति नेतृत्व का अविर्भाव नहीं होता– as a cementing unifying personality co-ordinating all the particular knowledges (तमाम विशेष ज्ञानों को संयोजित करने वाले ठोस व्यक्तित्व के रूप में)। परन्तु रूस में लेनिन की मृत्यु के बाद भी इस तरह के एक नेता का अविर्भाव हुआ। हालांकि स्तालिन को लेकर बहुतों के अनेक सवाल हैं, लेकिन हमारे अंदर उस तरह का कोई सवाल नहीं है। फिर भी, हमलोगों ने देखा है कि उन्हीं स्तालिन के नेतृत्व काल में ही कुछ त्रुटि-खामी दिखाई देनी शुरू हुई और जरूरत के अनुसार चेतना के स्तर के विकास का संघर्ष नहीं होने से धीरे-धीरे उसमें गिरावट आती रही। और, चेतना के स्तर में जितनी गिरावट आती गयी, अर्थव्यवस्था में पूंजीवाद के जो बीज मौजूद थे और उसी के ऊपरी ढांचे के तौर पर सामाजिक जीवन में, यहां तक कि कम्युनिस्टों में भी रुचि-संस्कृति के क्षेत्र में, मानसिक संरचना में जो बीज छिपे हुए थे, वे बढ़ते गये। ये तमाम समाजवादी गतिविधियों, कार्यक्रमों, क्रांति का समर्थन करने, साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष को निर्मित व ताकतवर करने, शांति की नीति को बुलन्द रखने, युद्ध की निन्दा करने, वर्ग संघर्ष की बात करने, पूंजीपतियों के खिलाफ नारेबाजी करने आदि से ही ये सारी बातें पकड़ में नहीं आती। परन्तु जहां निजी मालिकाना पूरी तरह से विलुप्त नहीं हुआ है, चेतना का स्तर नीचे रहने से वहां, उस मानसिकता में बहुत सारी जटिलताएं पैदा होंगी। व्यक्तिवाद का प्रभाव छिपे तौर पर बढ़ता रहेगा। यह जो व्यक्तिवाद का प्रभाव, व्यक्तिवाद की मनोभावना समाजवादी माहौल में बढ़ती है, वह पूरी तरह से बुर्जुआ समाज की निकृष्ट स्तर की व्यक्ति केन्द्रिकता न

होने पर भी निश्चित तौर पर है तो व्यक्तिवाद ही। समाजवादी समाज के अंदर उस व्यक्तिवाद का अवशेष (hangover) रहता है। कुछ हद तक रूपगत एवं चारित्रिक तौर पर, कुछ हद तक चारित्रिक तौर पर बुर्जुआ जगत के साथ उसकी भिन्नता है। लेकिन, यह व्यक्तिवाद पुराने व्यक्तिवाद की धारावाहिकता ही है। फर्क महज इतना ही है कि नये माहौल के साथ सामंजस्य (adjust) रखते हुए उसका आवरण (coating), उसकी अभिव्यक्ति (expression), उसके कहने के लहजे, उसकी चाल-ढाल, उसकी रीति-नीति में बदलाव आ गया है।

सिद्धांत और व्यवहार के प्रसंग में

अतएव मार्क्सवाद आर्थिक निश्चयतावाद नहीं है। सिद्धांत और व्यवहार को जिस तरह से यांत्रिक तौर पर समझा गया है, ऐसी समझ के चलते ही यह घटना घटी है। सोवियत संघ में ये जो समाजवादी निर्माण की इतनी बड़ी कार्यवाहियां चल रही हैं, एवं जो तरक्की हो रही है, उसके तजुर्बे का सामान्यीकरण (generalisation) सैद्धांतिक विकास के सर्वव्यापक संघर्ष के बगैर नहीं हो सकता है जो बाहर से आता है (comes from without) अर्थात जो एक अलग तरह का संघर्ष है। इन दोनों को मिलाकर ही सम्पूर्ण मानवीय व्यवहार (total human practice) का संघर्ष है जो कम्युनिस्ट पार्टी का भी संघर्ष है। सोवियत संघ में इसकी अवहेलना हुई है। हालांकि इसकी आवश्यकता से कोई इंकार नहीं कर सकता, लेकिन इस पर बिल्कुल ही जोर नहीं दिया गया। क्यों नहीं दिया गया? सिद्धांत और व्यवहार परस्पर अविच्छिन्न रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तथा 'व्यवहार के बगैर सिद्धांत बांझ है और सिद्धांत के बगैर व्यवहार अंधा है'–ये स्तालिन की ही बातें हैं। लेकिन सिद्धांत और व्यवहार के संबंध में इतनी सारी बातें जानने तथा इस संबंध में स्तालिन की इस तरह की अभिव्यक्ति रहने के बावजूद सोवियत संघ में इसकी समझदारी स्पष्ट नहीं थी। सिद्धांत और व्यवहार का पारस्परिक संबंध ऐसा है कि दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं। किसी एक के लिए दूसरे को छोड़कर चलने की कोई गुजाइंश नहीं है। इसकी सही समझदारी

ऐसी है कि ये एक ही मानवीय व्यवहार (human practice) के दो पहलू हैं, द्वन्द्व के दो पहलू हैं–ये दोनों द्वन्द्व एक दूसरे के पूरक हैं। यदि ये द्वन्द्व कभी एक दूसरे के पूरक न होकर, यदि कभी विरोधात्मक (antagonistic) हों जायें, तो व्यवहार भी अंधा हो जायेगा, सिद्धांत भी बांझ हो जायेगा–कोई एक दूसरे की मदद नहीं कर पायेगा। तो देखा यह जा रहा है कि मानवीय व्यवहार (human practice) के ये दोनों पहलू एक दूसरे के साथ परस्पर द्वन्द्व-संघर्ष कर रहे हैं, एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं और एक दूसरे के पूरक हैं। परन्तु व्यवहार के लिए यहां एक पूर्व शर्त (prior condition) रखी गयी है। वह क्या है? वह है चेतना का आविर्भाव जिसे व्यवहार के पूर्व (prior of practice) स्थान दिया गया है। और यह चेतना, जो सिद्धांत के जरिये प्रतिबिम्बित होती है, उसे व्यवहार के मापदण्ड (criteria of practice) पर ही विचार करना होता है परन्तु यह व्यवहार का मापदण्ड स्थूल व्यवहार (crude practice) नहीं होता है। यह एक सामग्रिक मानवीय प्रैक्टिस (human practice) अर्थात भावगत (subjective) और वस्तुगत (objective) दोनों तरह की प्रैक्टिस को लिये हुए है। लेकिन भाव (subject) की भूमिका की व्याख्या करते हुए कुछ लोग मनोगतवाद (subjectivism) में डूब जाते हैं। इस मनोगतवाद में, मनोगत तर्क (subjective reasoning) में डूब जाने के चलते वे वस्तुस्थिति (object) की भूमिका को नहीं देख पाते हैं। परन्तु चेतना की पैदाइश के बाद, चेतना और वस्तु के पारस्परिक द्वन्द्वात्मक संघर्ष की शुरूआत होने के बाद वस्तु (object) पर भाव (subject) की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता। उनमें पारस्परिक संघर्ष शुरू होने के बाद से इसे नकारने की कोई गुजाइंश नहीं है। भौतिक परिवेश सिर्फ भाव को ही निर्मित नहीं कर रहा है, बल्कि भाव भी भौतिक परिवेश पर क्रिया कर रहा है, उसे परिवर्तित कर रहा है।

इसलिए सिद्धांत और व्यवहार के पारस्परिक संबंध की सही समझदारी हासिल करने, बदली हुई परिस्थिति के साथ सामंजस्य रखते हुए मार्क्सवाद को उन्नत व आधुनिक करने, यहां तक कि मार्क्सवाद के जिन सिद्धांतों की आज भी उपयोगिता बनी हुई है,

उनकी भी समझदारी को उन्नत करने की जरूरत है। जैसे, सर्वहारा अधिनायकत्व के सिद्धांत अर्थात वर्ग संघर्ष की परिणति में अवश्यम्भावी तौर पर सर्वहारा अधिनायकत्व की स्थापना और वर्गहीन समाज में पूरी तरह से रूपान्तरित होने के पहले तक सर्वहारा अधिनायकत्व के मुख्य स्तम्भ (bulwark) के तौर पर काम करने संबंधी सिद्धांत, कम्युनिस्ट पार्टी संगठन संबंधी सिद्धांत और उसकी जनवादी केन्द्रीयता की नीति, साम्राज्यवाद व सर्वहारा क्रांति के युग में विभिन्न देशों की जनवादी क्रांतियों पर विचार करने के तौर-तरीके, कायदे यानी मार्क्सवाद की आम नीतियों को प्रयोग करते वक्त इन्हें किस तरह से देखना होगा–इन विषयों के संबंध में मार्क्सवाद का जो विस्तारीकरण और समृद्धीकरण लेनिन ने किया है, उसकी उपयोगिता आज भी बनी हुई है। परन्तु तत्कालीन समय में इनमें से प्रत्येक सिद्धांत की जो समझदारी थी और जिस ढंग से उनकी अभिव्यक्ति हुई है, आज भी अगर उनके बारे में वही समझदारी रहे, उन्हें उसी ढंग से अभिव्यक्त किया जाये, तो दिक्कत होगी ही। आज भी उन्हें उसी ढंग से अभिव्यक्त करने का मतलब क्या है? इसका मतलब है, उस सिद्धांत के संबंध में वही पुरानी समझदारी बनी हुई है, और, यदि वही समझदारी बनी रहती है, तो इतने दिनों तक उस सिद्धांत को प्रयोग करने के चलते उसके साथ जो हजारों द्वन्द्व पैदा हुए हैं, उनको हल कर पाना संभव नहीं होगा। यानी उस सिद्धांत को जब प्रयोग करेगें तो उसके साथ जो निरंतर द्वन्द्व पैदा होंगे, उन द्वन्द्वों का समाधान विभिन्न स्तरों पर करने के लिए उस सिद्धांत को ठीक-ठीक ढंग से समझना व प्रयोग करना सम्भव नहीं होगा। इसलिए अभिव्यक्ति का ढंग यहां महत्वपूर्ण है। यहां अभिव्यक्ति से मेरा आशय हर व्यक्ति की अभिव्यक्ति के जो अपने-अपने कायदे या लहजे हैं, अपने-अपने तौर-तरीके हैं, उनसे नहीं है। अभिव्यक्ति से यहां मेरा आशय वर्ग अभिव्यक्ति से है, वैचारिक समझदारी की कैटगरी के स्तर से है। अतएव 'अभिव्यक्ति' शब्द को शाब्दिक तौर पर मत समझिए। किसी व्यक्ति के बोलने, लिखने का निजी ढंग कहने से जो समझा जाता है, उस तरह से इसे मत समझिए। सामग्रिक तौर पर समझ की एकरूपता (oneness

in approach) कहने से जो हम समझते हैं, अभिव्यक्ति का मतलब यहां वही समझना होगा। यानी मौलिक समझदारी की आम अभिव्यक्ति (generalised expression of essential understanding) समझना होगा। तब, इस अभिव्यक्ति में बदलाव आयेगा। अभिव्यक्ति बदलती रहती है। इसका मतलब क्या सिद्धांत बदल जाते हैं? नहीं, इस सिद्धांत के बारे में उस समय जो समझदारी थी, अर्थात उस समय जिन लोगों ने इस सिद्धांत का प्रयोग किया, उस समय उन लोगों ने इस सिद्धांत को जिस तरह से समझ कर इसका प्रयोग किया था, उसके संबंध में आज की समझदारी उससे और उन्नत हो रही है, वह क्रमशः स्पष्ट से स्पष्टतर होती आ रही है। कारण, उसके सामने नये-नये द्वन्द्व आये हैं और उन द्वन्द्वों को उसे हल करना पड़ा है तथा उसके तजुर्बों से उसके ज्ञान में और वृद्धि हुई है। यदि ऐसा नहीं होता है, तो सिद्धांत अपरिवर्तनीय यानी जड़सूत्र (dogma) बन जाता है।

चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का विश्लेषण

मौजूदा समय में सोवियत नेतृत्व, चीन के नेतृत्व को, जहां अंधविश्वासी और कठमुल्लावादी (dogmatist) कह रहा है, वहीं चीनी नेतृत्व, सोवियत नेतृत्व को संशोधनवादी (revisionist) कहकर उसकी आलोचना कर रहा है। उन दोनों में हम एक चीज देख रहे हैं। दोनों पक्ष यह तर्क देते हुए कि 'परिस्थिति में बदलाव आया है'–जब अपनी बात रखते हैं, तो दोनों लेनिन को उद्धृत करते हैं और अपनी बात को स्वीकार करने योग्य बनाने के लिए जिस जगह पर, जिस तरह से कहने से उन्हें सुविधा होती है, ठीक उसी तरह से वे उन बातों को रखते हैं। सोवियत संघ के संशोधनवादी नेतृत्व के मामले में निश्चित तौर पर एक खतरनाक चीज देख रहा हूं। वे लेनिन को शब्दशः बहुत कम उद्धृत करते हैं। दरअसल, लेनिन ने जो कहा है, उन बातों को वे अपने ढंग से कहते हैं। वास्तव में लेनिन ने यह बात कही है या नहीं, अथवा उन्होंने अगर कही है तो किस जगह पर, किस ढंग से कही है–इसे प्रमाणित करने की जरूरत उनके लिए महत्वपूर्ण नहीं है। अधिकांश लेखों में

वे थोड़ा-सा कह देते हैं कि ऐसा लेनिन ने कहा है। वे उन्हें ज्यादा 'उद्धृत' नहीं करते हैं। फिर, जो दूसरे पक्ष के हैं, यानी चीन, वे लेनिन को बिल्कुल हूबहू उद्धृत कर रहे हैं, नहीं तो माओ त्से-तुंग को उद्धृत कर रहे हैं। वे उस संदर्भ से अलग हटकर, उससे संबंध न जोड़कर ऐसा कर रहे हैं, जिस संदर्भ में लेनिन-माओ ने वे बातें कहीं थीं। उस समय के संदर्भ में जो बातें कही गयी थीं, नये संदर्भ में उसे प्रयोग करने में यदि बुनियादी सिद्धांतों में वे बातें आज भी मान्य हैं, उन बातों की कार्यकारिता आज भी बनी हुई है, तो कौन-कौन से नये द्वन्द्व पैदा हुए और उन द्वन्द्वों के समक्ष उनके प्रयोग में क्या अंतर होगा या क्या संयोजन या परिवर्तन होगा या फिर उसमें क्या संवृद्धि (development) होगी—इन बातों का जिक्र न कर हूबहू उसे उठाकर, उसे ही सही बताकर प्रयोग करने को कह रहे हैं। ये सारी चीजें और आदतें पुरानी हैं। इसलिए देख रहा हूं आज जो चीन संशोधनवाद के खिलाफ संघर्ष कर रहा है, क्रांति के परचम को मूलतः बुलन्द रखे हुए है—जैसा कि हमारी पार्टी मानती है—वह चीन भी अतीत की इस आदत से मुक्त नहीं हो पाया है। वे अपने रुख-रवैये (approach) में पूरी तरह से द्वन्द्वात्मक पद्धति का प्रयोग, आज की उन्नत धारणा में जिस तरह से मैं समझ रहा हूं, अर्थात ठीक तरह से प्रयोग करना कहा या समझा जाता है, उस स्तर पर नहीं पहुंच पाये हैं। वे संघर्ष तो कर रहे हैं, परन्तु उनमें पुरानी शैली (style) और आदतों का अवशेष आज भी रह गया है। उनकी बातों में पुरानी अभिव्यक्ति रहने की वजह से ऐसा लगता है कि उनकी समझदारी पुराने ढंग की ही है। इसका मतलब वह खूब उन्नत स्तर की नहीं है यानी अपर्याप्त है। मार्क्सवाद की समझदारी इस तरह के पुराने स्तर की रहने से काम नहीं चलता है। लेनिन ने कभी-कभी पुराने मार्क्सवादियों की प्रशंसा (uphold) करते हुए कहा है कि पुराने मार्क्सवादी कई बार नये मार्क्सवादियों से अच्छे होते हैं। परन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वे पुराने मार्क्सवादी इसलिए अच्छे होते हैं कि वे अपनी पुरानी धारणाएं लिये हुए हैं। पुराने मार्क्सवादी होने के कारण वे बहुत सारे तजुर्बों के अधिकारी होते हैं, इसलिए वे मार्क्सवाद को लगातार उन्नत करने

की क्षमता रखते हैं, नवीन जो हैं उनका कोई तजुर्बा न होने के कारण वे सिर्फ पुराने लोगों की बातों को कंठस्थ कर मार्क्सवाद को जड़सूत्रवाद (dogma) में तब्दील कर सकते हैं। इन अर्थों में उन्होंने पुराने लोगों की बात कही है, सिर्फ पुराने होने के चलते ही नहीं। पुरानी धारणा रहने से काम नहीं चलेगा।

पार्टी और जनता को शामिल कर सैद्धांतिक एकता लाने का वैचारिक संघर्ष, समाजवादी समाज में भी अपरिहार्य

इसलिए देखा जा रहा है कि चेतना का निम्न स्तर रहने के चलते ये सारी चीजें हो रही हैं और सोवियत संघ में मौजूदा समय में जो घटनाएं घट रही हैं, उनका मूल कारण भी यहीं है। तब, इससे बचने का उपाय क्या है? इससे बचने का उपाय है पार्टी के अंदर निरंतर वैचारिक संघर्ष चलाकर वैचारिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में चेतना के उन्नत स्तर को बरकरार रखना। दूसरी बात यह है कि एक समय जिन समस्याओं के अध्ययन के आलोक में मार्क्सवाद के सिद्धांत निर्मित हुए थे, क्रांति के बाद बहुत सारी नयी-नयी समस्याएं आयीं, जिनके बारे में पहले जानकारी नहीं थी। संभावित युक्ति से थोड़ा-बहुत समझ पाने से भी उनके बिल्कुल सटीक रूप और प्रकृति की जानकारी नहीं थी, जिन्हें सटीक तौर पर जानने की जरूरत है। समस्याओं की प्रकृति को हमेशा के लिए कोई भी नहीं जान पाया है। इसलिए सिर्फ आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि मानव जीवन को केन्द्र कर नये माहौल में, नये रूप में, जो नयी-नयी समस्याएं दिखाई दे रही हैं, उनके साथ संगति रखते हुए मार्क्सवाद को निरंतर समृद्ध करने की जरूरत है। तीसरी बात है, सामाजिक-आर्थिक-नैतिक तथा रुचिगत व दार्शनिक क्षेत्र में जिन मूल्यबोधों ने और लेनिनवाद की जिन मूल नीतियों ने कम्युनिस्ट आन्दोलन को संचालित किया है, उनमें से किन-किन मूल्यबोधों और नीतियों की आज भी उपयोगिता बची हुई है और किन-किन मूल्यबोधों और नीतियों की उपयोगिता खत्म हो चुकी है—इसे तय करने की जरूरत है। और उसके आधार पर, जिन नीतियों की आज भी उपयोगिता बनी हुई है, उन्हें केन्द्र कर पहले पार्टी के

अंदर और फिर पार्टी तथा जनता के बीच पूरी तरह से वैचारिक एकरूपता (uniformity) कायम करने के लिए वैचारिक-सांस्कृतिक क्षेत्र में तीव्र क्रांतिकारी संघर्ष शुरू करने की जरूरत है। पार्टी के अंदर तथा पार्टी और जनता के बीच यदि इस वैचारिक एकता (oneness in approach) को लाने का संघर्ष निर्मित नहीं होता है, तो समाजवादी व्यवस्था में उस वक्त भी निजी सम्पत्ति को केन्द्र कर, पण्य (commodity) उत्पादन तथा उसके वितरण को केन्द्र कर व्यक्तिवाद का जो बीज विभिन्न रूप में समाज में मौजूद है, वह अवश्यंभावी तौर पर समाजवादी समाज के नागरिकों में समाजवादी अर्थव्यवस्था के विकास को एक सुविधा में तब्दील कर देगा और उसके चलते एक सुविधावादी व्यक्तिवाद पैदा होगा। उससे बुर्जुआ लोकतंत्र और आजादी के संबंध में गलत धारणा नये आवरण और नये शब्दाडम्बर में पुनः उभरने की संभावना रहेगी। जैसे, चेकोस्लोवाकिया में व्यक्ति-आजादी की जो बात कही जा रही है, अगर सच कहा जाय तो यह वैसी ही बात है।

संशोधनवादी सोवियत नेतृत्व का गलत विश्लेषण

चेकोस्लोवाकिया में मौजूदा समय में जो घटनाएं घट रही हैं, उनके लिए सोवियत नेतृत्व के संशोधनवादी सिद्धांत और कार्यकलाप ही मुख्यतः जिम्मेवार हैं। जैसे, सोवियत नेतृत्व कह रहा है कि सर्वहारा अधिनायकत्व के युग का अंत हो गया है। जबकि हम जानते हैं, सर्वहारा वर्ग मानव इतिहास में सबसे अंतिम वर्ग है। इतिहास में सर्वहारा वर्ग का आविर्भाव सबसे अंतिम क्रांतिकारी वर्ग के तौर पर हुआ है, जो सर्वहारा वर्ग अपनी विरोधी ताकत को पूरी तरह से मिटाकर 'निषेध का निषेध' (negation of negation) की नीति के अनुसार अपने खुद के खात्मे का मार्ग भी प्रशस्त करेगा। यानी सर्वहारा अधिनायकत्व को खत्म कर समाज को वर्गविहीन तथा राज्यविहीन (stateless) समाज की ओर ले जायेगा। यही है राजसत्ता और वर्ग के खात्मे के संबंध में मार्क्सवाद की मूल बात। मार्क्सवाद के इस बुनियादी सिद्धांत को किस सिद्धांत, किस तथ्य और किस वैज्ञानिक विश्लेषण से उन्होंने गलत साबित किया? उनके

मनगढ़ंत तर्कों (subjective arguments) को कोई नहीं सुनना चाहता। तथ्यों से, समाज शास्त्र के इतिहास के विश्लेषण से, वर्ग संघर्ष के विकास के द्वन्द्वात्मक विचार-पद्धति द्वारा विश्लेषण से उन्हें यह साबित करना होगा कि सर्वहारा वर्ग अंतिम वर्ग नहीं है। और मार्क्सवाद के अनुसार 'वर्ग की अवलुप्ति' से हम क्या समझते हैं? जैसे, स्तर (stratum), तबका (section), श्रेणी (category)–ये सभी जब मात्र कार्य (work) और पेशे (profession) का अंतर बतलाते हैं, किसी आर्थिक स्थिति (economic status) अथवा श्रेणी (category) को अब और प्रतिबिम्बित नहीं करते–तब कहा जा सकता है कि वर्ग की अवलुप्ति हो गयी। परन्तु, यदि वे सभी आर्थिक श्रेणी (economic category) की बुनियाद पर खड़े उसके ऊपरी ढाँचे होते हैं, तो समझना होगा कि वर्ग का अस्तित्व बना हुआ है। मूल्य का नियम (Law of value) काम कर रहा है या निजी स्वामित्व विद्यमान है तो इसका मतलब ही है कि वर्ग का अस्तित्व बना हुआ है। ये मार्क्सवाद के विचार हैं। इस संबंध में सोवियत संघ के मौजूदा नेतृत्व का क्या कहना है? लेकिन सोवियत नेतृत्व ने तो इन सभी विषयों पर चर्चा किये बगैर ही कह दिया कि वे वर्गविहीन समाज में पहुंच गये हैं। वे कह रहे हैं कि सोवियत समाज वर्गविहीन समाज है, वहां वर्ग नहीं हैं। हालांकि इस मामले में दरअसल उन्होंने स्तालिन की एक पुरानी गलती का ही अनुसरण किया है। एक विषय पर थोड़ा ज्यादा जोर देने के चलते स्तालिनने अठारहवीं पार्टी कांग्रेस की रिपोर्ट पेश करने के दौरान यह गलती की थी। उन लोगों ने स्तालिनका जिक्र किये बगैर ही उनकी उस गलती को ही मूलधन बनाया है। इस सिद्धांत के लिए तो उन्हें स्तालिन के प्रति, स्तालिनकी गलती के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए था! यह गलती अगर स्तालिनसे न हुई होती, तो वे अपने दिमाग से ये बातें नहीं निकाल पाते। बहुत-सी बातों को उन्होंने विकृत किया है। लेकिन सभी सिद्धांत लेनिन व स्तालिन के हैं। चेतना के निम्न स्तर के चलते मौजूदा सोवियत नेतृत्व ने शुरू में सिद्धांतों को प्रयोग करने में गलती की। उसके बाद एक के बाद एक गलतियां होती रहीं। ऊपर से अहम् (ego), व्यक्तिवाद

(individualism), उग्र राष्ट्रवाद (national chauvinism) आदि को मिलाकर उन्होंने उन गलतियों को एक ऐसी स्थिति में पहुंचा दिया है, जहां वे गलतियों को कबूल नहीं करते हैं। कोई दिखा भी देता है, तो भी वे उसे कबूल नहीं करते हैं। वे जिस तरह से आज चल रहे हैं, वैसे ही चलेंगे। ज्यादा से ज्यादा हुआ तो, यदि वे तर्क के दबाव में परेशानी में फंस जाते हैं तो थोड़ा-सा रेशनलाइज़ करके तर्क देते हैं- कि नहीं, वे तो ऐसा नहीं कहना चाहते थे; उन्होंने तो वैसा कहा है जबकि दोनों का अर्थ करीब-करीब बराबर है। लेकिन इसका मतलब तो ऐसा ही होता है कि जैसा वे कर रहे हैं, वैसा ही करते जायेंगे। उनके मामलों में ऐसा इसलिए हो रहा है, क्योंकि उनकी चेतना का स्तर पर्याप्त मात्रा में ऊंचा नहीं है। फलस्वरूप मूल विषय की सही समझ वे हासिल नहीं कर पाये हैं। चेतना के इस निम्न स्तर की वजह से ही वे यह कह पाये कि सोवियत अब मजदूर वर्ग का राज नहीं रहा, जनता का राज हो गया है। इस बात को कहने के पहले उन्हें यह साबित कर दिखाना चाहिए था कि सर्वहारा अधिनायकत्व के युग में सोवियत संघ में सर्वहारा अधिनायकत्व की जो भूमिका थी, उस भूमिका का पूरी तरह से निर्वाह हुआ और उसका प्रयोजन नि:शेषित हो गया।

व्यक्ति-स्वतंत्रता की धारणा के विकास का इतिहास

यदि वहां सर्वहारा अधिनायकत्व की आवश्यकता खत्म हो गयी है, तो वहां राजसत्ता (state power) की क्या जरूरत है? राजसत्ता वहां क्यों है? इन प्रश्नों का जवाब ख्रुश्चेव तथा उसके अनुयायियों ने नहीं दिया। मार्क्सवादी शब्दाडम्बरों की आड़ में उन लोगों ने उदारतावाद (liberalism) का द्वार खोल दिया है और चेकोस्लोवाकिया इस रास्ते कई कदम और आगे बढ़ गया है। उदारतावाद के नाम पर वे संसदीय लोकतंत्र को ही ग्राह्य बना रहे हैं। जिस संसदीय लोकतंत्र के संबंध में संसदीय लोकतांत्रिक देशों में भी लोगों का तेजी से मोह भंग हो रहा है, उसी संसदीय लोकतंत्र को वे समाजवाद, क्रांतिकारी शब्दाडम्बर और उदारतावाद की आड़ में लाना चाहते हैं। वे जो बातें कह रहे हैं, उसका अर्थ

यही है। वे कह रहे हैं, राजसत्ता (state), सरकार और अन्य संस्थाओं की स्वतंत्र भूमिका रहेगी। इसका क्या मतबल है? इसका मतलब है राजसत्ता पर पार्टी का कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। यानी, उनका मानना है कि राजसत्ता अपने आप में एक स्वयंभू संस्था है। बात सुनने में बहुत अच्छी लगती है और बेहद लोकतांत्रिक भी! टेक्नोक्रेट तो यही कहेंगे। यही तो बुर्जुआ जनवादियों की मूल बात थी। बुर्जुआ लोकतंत्र का सार भी यही था। बुर्जुआ जनवादियों का मानना है कि कार्यपालिका (executive), विधायिका और न्यायपालिका–सभी अलग-अलग होंगे। पार्टी तो अलग होगी ही। राजसत्ता या अन्य संस्थाओं पर पार्टी का कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। जैसा पार्टी निर्देश देगी, उसी के अनुसार राजसत्ता (state) का संचालन होगा–ऐसा नहीं चलेगा। पार्टी अपनी नीति को संसद या 'नेशनल एसेम्बली' में बहुमत के जरिये, अल्पमत के प्रति सम्मान रखते हुए उसके सहयोग से कार्यान्वित करेगी। वे कह रहे हैं, व्यक्ति-स्वतंत्रता का अधिकार मौलिक अधिकार है। किसी भी वजह से उसमें हस्तक्षेप करने नहीं दिया जा सकता। जॉन स्टुअर्ट मिल एक बुर्जुआ मानवतावादी थे। उन्होंने कहा था, यदि सम्पूर्ण मानव जाति के साथ किसी एक व्यक्ति का मत न मिले यानी एक व्यक्ति को छोड़कर सम्पूर्ण मानव जाति यदि एकमत हो जाये और अकेला होने पर भी यदि वह विरोधी मत रखता हो, तो उसके द्वारा, यदि उसके पास सत्ता क्षमता हो, सम्पूर्ण मानव जाति की आवाज को दबाने से जो अन्याय होगा, उसके अकेले के मत को दबाने से सम्पूर्ण मानव जाति भी वही अन्याय करेगी।* अतः किसी को यह हक नहीं है कि वह अल्पमत (minority) के मत को दबा दे–चाहे वह कोई भी क्यों न हो। तब मौलिक अधिकार नहीं रह जाता, आजादी नहीं रहती। यह आजादी के अर्थ को विकृत करना (vulgarisation) है, आजादी के नाम पर मनमानी सुविधा का उपभोग करना (ultra

* ("If all mankind minus one were of one opinion, and only one person were of the contrary opinion, mankind would be no more justified than he, if he had the power, would be justified in silencing mankind"- John Stuart Mill)

privilege of liberty) है। यह है बुर्जुआ वर्ग की व्यक्ति स्वतंत्रता, की अवधारणा। व्यक्ति स्वतंत्रता और मानव इतिहास में उसके उदय होने का संघर्ष भी सुनिर्दिष्ट नियमों द्वारा संचालित हुआ है–बुर्जुआ वर्ग द्वारा इसे नकारने के चलते ही ऐसी घटनाएं घटी हैं। बुर्जुआ लोकतंत्र के विकास के युग में, पूंजी के बेरोक-टोक विकास और प्रतियोगिता के युग में व्यक्ति स्वतंत्रता के अबाधित विकास के हित में बुर्जुआ लोकतंत्र के मूल सुर को मिल ने अपने सुंदर शब्दों के जरिये व्यक्त किया था ताकि 'बहुमत' की दुहाई देकर 'अल्पमत' की आवाज को दबाया न जा सके, उसका दमन न किया जा सके। अल्पमत, यहां तक कि एक व्यक्ति के विचार और मत को भी उपयुक्त सम्मान और महत्व मिले–यही था मिल की बातों का सही तात्पर्य। परन्तु मौजूदा समय के चरम प्रतिक्रियावादी क्षयोन्मुख पूंजीवाद के युग में बिल्कुल इस तरह से समझने से विपत्ति होगी।

जिन बुर्जुआ लोगों ने एक जमाने में निरंकुशता (absolutism) के खिलाफ संघर्ष किया था, उन्हीं लोगों ने आज व्यक्ति-सम्पत्ति को निरंकुश बना डाला है

हमें याद रखना चाहिए कि व्यक्ति-स्वतंत्रता का संघर्ष आसमान से नहीं टपका है और बात ऐसी भी नहीं है कि मिल नामक किसी व्यक्ति के दिमाग में अचानक यह बात आ गयी या मिल एक महामानव थे–जिन्होंने मानव-मुक्ति और आजादी की विजय पताका फहरायी। उनसे पहले जो महापुरुष हुए हैं, वे उनके जैसे प्रतिभावान (genius) नहीं थे, इसी वजह से वे यह सब नहीं सोच सके! ऐसा कहने से लोग नहीं मानेंगे। दरअसल, बुर्जुआ लोगों की आजादी की धारणा, पूंजीवादी क्रांति में चरम आजादी (absolute freedom) की जो धारणा छिपी हुई थी, उसी का प्रतिबिम्बन है। सामंतवाद के खिलाफ बुर्जुआ लोगों की इसी धारणा ने उत्पादन में, उत्पादन संबंध में और सम्पूर्ण समाज में क्रांतिकारी बदलाव ला दिया। यह निजी सम्पत्ति के अधिकार के आधार पर ही हुआ। हालांकि जिस निरंकुशता (absolutism) के खिलाफ संघर्ष कर बुर्जुआ लोगों ने यह क्रांति सम्पन्न की, आगे चलकर कानूनी (legal) और संवैधानिक

(constitutional) अनुमोदन (sanction) देने के जरिये निजी सम्पत्ति के इस अधिकार को गणतंत्र के नाम पर उन्होंने निरंकुश बना डाला और उसे निरंकुश (absolute), पवित्र (sacred), ईश्वरीय (devine) जैसी जगह पर स्थापित करना चाहा। बुर्जुआ लोकतंत्र के युग में पैदा हुई व्यक्ति आजादी, व्यक्ति स्वातंत्र्य और व्यक्ति अधिकारबोध की धारणा को उन्होंने निरंकुश (absolute) बना डाला। जबकि आज पूंजीवाद के सर्वव्यापक संकट के युग में निजी मालिकाना उत्पादन तथा उत्पादक शक्तियों के विकास में, समाज के सर्वांगीण विकास में चरम रुकावट पैदा कर रहा है। व्यक्ति आजादी और व्यक्ति अधिकार संबंधी बुर्जुआ धारणाएं चरम व्यक्ति केन्द्रिकता और खुदगर्जी में तब्दील हो गयी हैं। वे व्यक्ति को समाज के संबंध में ज्यादा से ज्यादा उदासीन बना रही हैं। आज जब निजी मालिकाने के स्थान पर एकमात्र सामाजिक मालिकाने की स्थापना के जरिये ही समाज के उत्पादन, ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति और सभ्यता का सर्वांगीण विकास संभव है।

ऐसी स्थिति में, व्यक्ति के अधिकार संबंधी बुर्जुआ धारणा और व्यक्ति हित की भावना से मुक्त होकर सामाजिक हित के साथ स्वयं को विलीन कर देने का संघर्ष ही व्यक्ति-स्वतंत्रता या व्यक्ति की मुक्ति हासिल करने का सही संघर्ष है। मार्क्सवाद की सही समझदारी न रहने के चलते और बुर्जुआ उदारतावाद का प्रभाव रहने के चलते संशोधनवादी इसे समझ नहीं पाये। यही वजह है कि वे व्यक्ति-स्वतंत्रता के नाम पर आज के युग की अति आजादी की भावना (ultra sense of freedom) का नारा दे रहे हैं तथा संसदीय लोकतंत्र को ही ज्यादा से ज्यादा ग्राह्य बना रहे हैं। चेकोस्लोवाकिया के बुद्धिजीवी समाजवाद के नाम पर यही चाहते हैं। वे समाजवाद के लबादे में बुर्जुआ संसदीय लोकतंत्र ही चाहते हैं। परिणामस्वरूप व्यक्तिगत तौर पर जो लोग धन-दौलत के लिए, अपने लिए काम करते हैं–जिस धारणा को पूंजीवादी क्रांति लायी थी–उन व्यक्तियों में, उन बुद्धिजीवियों में, उन टेक्नोक्रेटों में, और उन सरकारी अफसरों में यदि कोई सामाजिक चेतना न रहे तब तो उन बुर्जुआ लोकतंत्रवादियों (democrats) और प्रतिक्रांतिकारियों की पौ बारह

है। क्योंकि जिनकी अक्ल पर चर्बी चढ़ी हुई है, उन्हीं बुद्धिजीवियों, अफसरों और टेक्नोक्रेटों के जरिये ही तो प्रतिक्रांतिकारी लोग राजनैतिक क्षेत्र में या राज्य संरचना (state structure) में घुसपैठ करते हैं। क्या वे शारीरिक श्रम करने वाले मजदूरों के जरिये घुसपैठ करते हैं? उन्हें वे कुछ हद तक एजेंट के रूप में इस्तेमाल भर कर लेते हैं। लेकिन, वे घुसपैठ करते हैं इस तरह के शिक्षित व्यक्तियों के जरिये ही जो प्रशासन में, राजनैतिक हलकों में और अन्य क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थानों पर काबिज हैं। ऐसे लोगों के जरिये ही प्रतिक्रांतिकारी घुसपैठ करते हैं।

व्यक्ति की मुक्ति किस रास्ते

फलस्वरूप, चेकोस्लोवाकिया के तमाम कार्यक्रम एक नजर में प्रमाणित करते हैं कि इन सब के द्वारा दरअसल उन लोगों ने उदारतावाद पर अमल किया है। समाजवाद का नारा उनके लिए मात्र एक आवरण था। यह आवरण इस वजह से काम कर सका कि वहां के बहुत सारे देश प्रेमी लोग जिनको साम्राज्यवाद का दलाल नहीं कहा जा सकता लेकिन जिनके अंदर संशोधनवादी शासक गुट के खिलाफ असंतोष था उन्होंने इस उदारतावाद को ही समाजवाद समझकर इसका स्वागत किया। यहां तक कि चेतना का स्तर निम्न होने की कमजोरी की वजह से चेकोस्लोवाकिया कम्युनिस्ट पार्टी के बहुत से सदस्यों ने भी इसका स्वागत किया। उदारतावाद के प्रभाव के कारण वे सभी बुर्जुआ जनवाद, व्यक्ति स्वतंत्रता एवं बुर्जुआ समानाधिकार को ही कम्युनिज्म समझ बैठे हैं। व्यक्ति आजादी की जो बुर्जुआ धारणा है, नये शब्दाडम्बर में इसका नाम कुछ भी क्यों न हो, आम जनता समझती है कि वह इसी की हकदार है। इसी को वह कम्युनिज्म की मूल बात समझती है। वह नहीं जानती कि व्यक्ति-स्वतंत्रता और समानाधिकार संबंधी प्रचलित यह धारणा एक खास परिघटना (phenomenon) है, एक उपफल (by product) है, एक सामयिक चीज है और इसकी भूमिका इसी बीच खत्म हो चुकी है। आज यह सुविधा में तब्दील हो चुकी है, प्रतिक्रियावादी रूप अख्तियार कर चुकी है। आज व्यक्ति-स्वतंत्रता का संघर्ष

समाजवादी अर्थव्यवस्था तथा समाजवादी व्यवस्था में सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्ति स्वार्थ के द्वन्द्व को मिटाने के लिए सामाजिक उत्पीड़न (social coercion) के जो अंतिम अवशेष रह गये हैं उनको मिटाना होगा, क्योंकि उसका समाधान करना होगा। अगर उसका समाधान करना है, तो सामाजिक स्वार्थ के साथ व्यक्तिगत स्वार्थ के द्वन्द्व के विरोधात्मक चरित्र को मिलनात्मक चरित्र में तब्दील कर देना होगा, एक-दूसरे के पूरक (mutually conducive to each other) बना देना होगा। इसका मतलब है, सामाजिक हित के साथ व्यक्तिगत हित को एकात्म (identification) कर देने के संघर्ष की शुरूआत करनी होगी। इस संघर्ष में ही सामाजिक विरोध (conflict) और दमन-उत्पीड़न (coercion) से व्यक्ति की मुक्ति निहित है। मानव द्वारा मानव पर थोपे गये दमन-उत्पीड़न–जिससे राजसत्ता की उत्पत्ति हुई है–इस दमन-उत्पीड़न से मुक्ति का उपाय समाज परिवर्तन के नियम की परिणति में सत्तात्मक क्रांति के जरिये राजसत्ता के विलोप के रास्ते ही निहित है।

वस्तुगत और भावगत उत्पादन

जिसे वे चिंतन की स्वतंत्रता कह रहे हैं, अगर वे मार्क्सवादी हैं, तो उन्हें जानना चाहिए कि वह चिंतन भी 'एब्सोल्यूट' अर्थ में या 'कंडीशन' मुक्त अवस्था में स्वाधीन नहीं है। मैंने दूसरी चर्चा में दिखाया है कि कोई चिंतन आने से पूर्व उसकी वस्तुगत परिस्थिति (material condition) पहले आती है और कोई कितना भी बड़ा चिंतनकार क्यों न हो, एक खास वस्तुगत परिस्थिति के परिमंडल (given category of material condition) का अतिक्रमण (supersede) कर पाना उसके लिए संभव नहीं है। वस्तुगत परिस्थिति में बदलाव आने पर चिंतन में भी बदलाव आता है। फिर चिंतन भी वस्तुगत परिस्थिति पर क्रिया कर उसे परिवर्तित करने में मदद करता है। इस तरह से वस्तुगत परिस्थिति और चिंतन दोनों लगातार बदल रहे हैं। फलस्वरूप, चाहे धार्मिक चिंतन हो, चाहे बुर्जुआ मानवतावादी चिंतन हो, चाहे बुर्जुआ व्यक्ति-स्वतंत्रता या व्यक्ति-अधिकार की धारणा हो–कोई भी शाश्वत (asolute) नहीं है,

सर्वकाल के लिए नहीं है। कोई खास चिंतन या भाव, किसी खास वस्तुगत परिस्थिति (material condition) में, किसी खास उत्पादन व्यवस्था के विकास के हित में प्रगतिशील भूमिका अपनाने पर भी, नयी परिस्थिति में उत्पादन के विकास की नयी जरूरत से वह प्रतिक्रियाशील हो जाता है। तब नयी वस्तुगत परिस्थिति में नये चिंतन का जन्म होता है। इसलिए, किसी भी चिंतन या अधिकार की धारणा शाश्वत (absolute) नहीं है। हमें याद रखना चाहिए कि प्रकृति के खिलाफ मानव का तथा विभिन्न वर्गों के बीच परस्पर जो रोजाना संघर्ष चल रहा है, उसी संघर्ष की उपज (product) के तौर पर चिंतन का जन्म हो रहा है। यह भी एक प्रकार का उत्पादन है और इसे मार्क्सवादी परिभाषा में भावगत उत्पादन (spiritual production) कहा जाता है। प्रकृति के खिलाफ लड़कर मनुष्य अपनी मेहनत और प्रयास के जरिये जो उत्पादन करता है, वह उत्पादन भावगत (spiritual) और वस्तुगत (material) दोनों ही प्रकार का है। इन दोनों को मिलाकर ही सामग्रिक उत्पादन को समझना होगा। अतः मनुष्य जो उत्पादन कर रहा है, उसमें एक तरफ है वस्तुगत और दूसरी तरफ है भावगत उत्पादन, या जिसे हम मस्तिष्क की क्रिया कहते हैं–वह भी वस्तु द्वारा ही गठित है। फिर ये दोनों परस्पर द्वन्द्वात्मक रूप से (inter dialectically) एक दूसरे को प्रभावित कर रहे हैं। कभी वस्तुगत परिस्थिति (material condition) अग्रणी भूमिका लेते हुए भाव को निर्मित करने में मुख्य भूमिका निभाती है। ऐसा नहीं है कि वह निरंकुश और एकमात्र भूमिका निभा रही है। फिर, कहीं भाव (subject) वास्तविक परिवेश को मोड़ते–पलटते हुए (twist), परिवर्तित (turn) करते हुए उसे निर्मित करने में मुख्य भूमिका निभा रहा है। इस तरह से मुख्य भूमिका की लगातार अदला-बदली हो रही है। यह है द्वन्द्ववाद की एक और खास विशेषता जिसे याद रखना जरूरी है।

राजसत्ता कब विलुप्त होगी

तो हम पाते हैं कि वे इन चीजों को समझ नहीं पाये। चेतना की निम्न स्तर जनित कमजोरी के चलते ही वे वैचारिक और

सांस्कृतिक आन्दोलन का एक व्यापक प्रभाव डालकर व्यक्तिगत तमाम चीजों का परित्याग कर सामाजिक हित के साथ स्वयं को विलीन कर पाने की मानसिकता पैदा कर पाने में सक्षम नहीं हुए। वे यह नहीं समझ सके कि समिष्ठ के हित के साथ व्यक्ति के हित को विलीन कर देना (merging) किसी भी तरह से व्यक्ति-स्वतंत्रता का हनन नहीं है, बल्कि समिष्ठ के हित के साथ व्यक्ति के हित को विलीन कर देने में ही व्यक्ति की सही मुक्ति निहित है। इसके बिना सामाजिक उत्पीड़न से व्यक्ति कभी भी पूरी तरह से मुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि, जब तक व्यक्ति हित के साथ सामाजिक हित का विरोधात्मक द्वन्द्व (antagonistic contradiction) रहेगा, तब तक राजसत्ता भी दमन-उत्पीड़न का औजार (instrument of coercion) बनी रहेगी, व्यक्ति पर सामाजिक दमन (repression) बना रहेगा। ऐसी स्थिति में एकमात्र व्यक्ति हित को सामाजिक हित के साथ पूरी तरह से विलीन कर देने के जरिये ही व्यक्ति हित और सामाजिक हित का जो विरोधाात्मक द्वन्द्व है, उसका खात्मा कर पाना संभव है और एकमात्र वैसी स्थिति में ही सामाजिक उत्पीड़न के औजार के तौर पर मौजूद राजसत्ता का विलोप होगा। संघर्ष की यही प्रक्रिया समाजवादी व्यवस्था में व्यक्ति की सही मायने में मुक्ति हासिल करने का संघर्ष है। यही उसकी परिणति है और यह नियम द्वारा नियंत्रित है। और, ऐसा किये बगैर व्यक्ति सामाजिक उत्पीड़न से कभी मुक्त नहीं हो सकता। इसे नकार कर व्यक्ति स्वतंत्रता चाहने का मतलब है व्यक्ति को अपाहिज कर देना। देखिएगा, इस तरह की व्यक्ति-स्वतंत्रता की धारणा द्वारा संचालित व्यक्ति एक स्थिति में दूसरे से सुविधा लेते हैं, तो दूसरी स्थिति में अपने आर्थिक हित, अवसर और सहूलियतों के लिए दूसरों की गुलामी करते हैं, उनकी धमकियों के आगे सिर झुकाते हैं—जैसा कि नौकरशाह कर रहे हैं। नौकरशाहों का तबका एक ओर अपने से नीचे के लोगों को खूब डांटता-फटकारता है, अपने को खूब ताकतवर समझता है, ऐसा महसूस करता है कि उसके जैसा क्षमतावान व्यक्ति और कोई है ही नहीं, तो दूसरी ओर अपने से ऊपर के अफसरों की जी-हुजूरी करता है। क्योंकि इंसान के तौर

पर वह अपाहिज है। वह अपने पद की क्षमता, आर्थिक सुविधा, अपनी झूठी शान, झूठे अहम् और मिथ्या व्यक्तिवाद पर खड़ा है।

पूर्वी यूरोपीय देशों के कम्युनिस्टों में अपमानित राष्ट्रीयताबोध काम कर रहा है

इसके अलावा, पूर्वी यूरोप के देशों में, खासकर चेकोस्लोवाकिया में दूसरे विश्वयुद्ध में फासिस्टों की पराजय के जरिये कम्युनिस्टों के सत्ता में आने के बावजूद सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद का प्रभाव कभी भी दृढ़ता के साथ स्थापित नहीं हो सका। मार्शल टीटो प्रकरण के बाद मुझे खास तौर पर ऐसा महसूस हुआ था। टीटो ने मास्को में शिक्षा प्राप्त की थी। वे स्तालिन की अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट वाहिनी के एक अत्यंत वफादार और विश्वस्त व्यक्ति थे। एक तरह से कहा जाये तो टीटो स्तालिन के खुद के हाथों तैयार हुए थे। अपने हाथों से तैयार व्यक्ति की इस तरह की विकृति को देखकर असली समस्या की ओर स्तालिनकी पैनी नजर पड़ी थी या नहीं, मुझे नहीं मालूम। इसे समझने का उपाय नहीं था। परन्तु मैंने देखा कि उन्होंने कुछ चीजों को समझने का प्रयास किया था और उसे समझ भी गये थे। वह यह कि पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों के तमाम कम्युनिस्टों में बाल्कन देशों की अपमानित राष्ट्रीयता की भावना (national humiliation) कम्युनिज्म की बड़ी-बड़ी बातों में भी मिली हुई है। वहां फासीवाद विरोधी जो राष्ट्रीय क्रांति हुई—जो मूलतः बुर्जुआ जनवादी क्रांति थी—उसमें यह पकड़ में नहीं आयी। लेकिन, दरअसल यह बाल्कनी सुप्त अपमानित राष्ट्रीयताबोध तमाम प्रगतिशील शब्दाडम्बर की आड़ में उसमें छिपा हुआ है। इस पर चोट कर पाने में सक्षम, इसे तोड़ पाने में सक्षम, एकमात्र सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के जरिये ही इस संकीर्ण राष्ट्रीयतावादी मानसिकता को चकनाचूर कर देना संभव है। यदि ऐसा करना है, तो इस बात को प्रश्नातीत रूप से स्थापित करना होगा कि सही देश-प्रेम और सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद एक दूसरे के पूरक के तौर पर साथ-साथ निर्मित होते हैं, जिस तरह से मार्क्सवाद ने एक जमाने में तमाम बुर्जुआ विचारों के खिलाफ

सैद्धांतिक तौर पर अपनी श्रेष्ठता को स्थापित किया था। इस बात को स्थापित कर पाने से बुद्धिजीवियों में उनकी बुद्धिमत्ता के चलते एक हलचल पैदा होगी ही; आम लोगों पर भी इसका असर पड़ेगा तथा बुद्धिजीवियों में भी इसके प्रभाव के फलस्वरूप यह सामाजिक आन्दोलन में तब्दील हो जायेगी। और, सामाजिक आन्दोलन में तब्दील होने से ही सही सांस्कृतिक क्रांति और पुनरुज्जीवन (regeneration) का मौका मिलता है, बड़े पैमाने पर जन आन्दोलन का मौका मिलता है। स्तालिन ने इसकी शुरुआत की थी, परन्तु इसे शुरू कर कुछ दूर आगे बढ़ने के उपरांत ही उनका निधन हो गया।

ख्रुश्चेव का सस्ती लोकप्रियता पाने का निकृष्ट आचरण

उदारतावाद पर अमल करने वाले जिन चैम्पियनों को स्तालिन ने जेल में बंद कर इस काम को आरंभ किया था, ख्रुश्चेव ने सत्ता में आकर उन लोगों को मुक्त कर दिया। स्तालिन ने उन्हें इसलिए जेल में डाला था कि उन्हें बाहर छोड़कर कुकर्म करने की छूट देकर उस काम को आरंभ नहीं किया जा सकता था। उनकी एक तरह की सस्ती लोकप्रियता होती है। उनकी जैसी 'लोक लुभावन' बातें, हाव-भाव, आचार-व्यवहार हमेशा ही चेतना के निम्न स्तर की जमीन पर काम करते हैं–जिसके फलस्वरूप ख्रुश्चेव देखते ही देखते किस तरह लोकप्रिय हो गये। निश्चित तौर पर वे लोकप्रिय हुए हैं, लेकिन गलत लोगों के बीच। अचानक देखा गया कि वे 'कैसे हो भाई' कहकर किसी से गले मिलने लगे या नाइट क्लब की किसी लड़की का आलिंगन कर नाचने लगे। यह सब देखकर बहुत लोग कहने लगे, 'देख रहे हो कितने सरल हैं, तनिक भी घमंड नहीं है।' इस तरह का घटिया राजनीति स्टंट अपनाना इन लोगों का तरीका है। दरअसल, यह सब सस्ती लोकप्रियता के आवरण में अत्यंत निष्कृष्ट किस्म का अहम् बोध है जो विचार-विश्लेषण के जरिये अंत तक पकड़ में आ ही जाता है। जो व्यक्ति अहम् बोध से मुक्त होता है, उसे इस तरह की 'सस्ती लोकप्रियता' के हाव-भाव अपनाने की जरूरत नहीं होती। उस व्यक्ति का आचार-व्यवहार अत्यंत सीधा-साधा और मर्यादा सम्पन्न होता है।

उस व्यक्ति में इस तरह का तुच्छ व निकृष्ट सोच-विचार नहीं रहता। उसका हर काम लोकप्रियता हासिल करने के लिए नहीं होता या इस ढंग से ये चीजें प्रतिबिम्बित नहीं होती कि लोग समझें कि ऐसा आदमी दूसरा कोई है ही नहीं। इस तरह की बदतरीन चीजें उसके चिंतन या विचार-विवेचना में ही नहीं होती। वह दुसरे तरह का ही इंसान होता है। यही वजह है कि एक ओर जिस तरह वह मित्र बनाता है, इंसान बनाता है, दूसरों को अनुप्राणित करता है, सही रास्ता दिखाता है, लोगों में चरित्र तैयार करता है, तो दूसरी ओर लोगों का एक तबका उसे गलत समझकर उसके खिलाफ चला जाता है, प्रतिक्रियावादी उसके खिलाफ चले जाते हैं। वह सभी को प्रिय होता है, सभी लोग उसे बहुत अच्छा आदमी कहते हैं–ऐसा नहीं होता। परन्तु इस 'लोक लुभावन' हाव-भाव, आचार-व्यवहार वाले व्यक्ति हैं ख्रुश्चेव।

ख्रुश्चेव ने सोवियत संघ की अर्थव्यवस्था में एक भटकाव ला दिया है। सोवियत संघ में वे इस भटकाव को ला पाये, इसके पीछे कारण यह था कि स्तालिन के जमाने में मार्क्सवाद की दार्शनिक समझदारी का बेरोक-टोक विकास नहीं हो पाने के चलते वैचारिक और सैद्धांतिक मामले में चेतना के स्तर में गिरावट आयी थी या विकास करने पर भी, थोड़ी-बहुत तकनीकी सामग्री जुटा पाने के पहलू से समझदारी कुछ हद तक समृद्ध होने के बावजूद, समाजवादी अर्थव्यवस्था व लोगों की जीवनधारा को क्रमशः जिन नयी-नयी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था तथा अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन, विश्व की परिस्थिति और जन आन्दोलन के सामने जो नयी-नयी समस्याएं पैदा हो रही थीं, उनका हल ढूंढ़ पाने में वह समझदारी नाकाफी (inadequate) थी। क्योंकि चेतना का स्तर एक जगह पर स्थिर नहीं रहता। यह जो एक तरफ साम्यवादी आन्दोलन की अग्रगति हुई, अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण हुआ, तो दूसरी तरफ सैद्धांतिक स्तर में गिरावट आयी–इसी के चलते कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद चेतना के स्तर में गिरावट की वजह से समाजवादी अर्थव्यवस्था और वैचारिक मामले में तरह-तरह के भटकाव दिखाई देने लगे। चेतना के गिरते स्तर के बावजूद यह

स्तालिन जैसे नेतृत्व की मौजूदगी थी जिसने मार्क्सवाद की राजनीति, अर्थनीति, रुचि-संस्कृति और दर्शन के क्षेत्र में बुनियादी तौर पर रक्षा की थी। लेकिन वह नेतृत्व जब मौजूद नहीं रहा, तो मार्क्सवाद से सम्पूर्ण भटकाव आने के रास्ते में कोई अड़चन नहीं रही।

समाजवाद के बारे में गलत धारणा

हम जानते हैं कि विनिमय के माध्यम के तौर पर मुद्रा की भूमिका तथा पण्य-उत्पादन व परिचालन व्यवस्था को खत्म करके, उत्पादन व वितरण की उपयुक्त सांगठनिक व्यवस्था निर्मित करने के जरिये ही हम 'हरेक को उसकी योग्यता के अनुसार' की स्थिति से 'हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' की स्थिति में जा सकते हैं। लेकिन, क्या किसी मनगढ़ंत योजना से यह काम कर पाना संभव है? 'काल्पनिक समाजवादियों' ने समाज के तमाम लोगों को बराबर करना चाहा। साम्यवाद ने ऐसा नहीं सोचा। साम्यवाद ने सामाजिक उत्पीड़न से लोगों को मुक्त करने की बात सोची है। हर व्यक्ति संघर्ष कर रहा है, निजी पहलकदमी से वह बड़ा बनेगा, लेकिन चूंकि हर व्यक्ति अलग सत्ता है, इसलिए कोई भी दो व्यक्ति आपस में बराबर नहीं होंगे। लेकिन, वे सामाजिक उत्पीड़न से मुक्त होंगे, आर्थिक शोषण से मुक्त होंगे, नैतिक गिरावट (moral depravation) से मुक्त होंगे। परन्तु वे सापेक्ष तौर पर मुक्त हैं–वे मात्र सामाजिक रूप से, सामाजिक परिवेश में मुक्त हैं, वे उत्पादन और वितरण के द्वन्द्व के परिप्रेक्ष्य में मुक्त हैं–उनके साथ कोई अन्याय नहीं हो रहा है। समाज में अन्याय और पक्षपात के तमाम कारकों को खत्म कर दिया गया है। लेकिन, प्रकृति के खिलाफ उनका संघर्ष जारी है और यह संघर्ष आगे भी जारी रहेगा। प्रकृति पर लगातार विजय हासिल करते हुए समाज और सभ्यता आगे बढ़ती रहेगी। अतएव 'उत्पादन की प्रचुरता द्वारा समाजवाद'–इस बात का मतलब यह नहीं है कि पण्य-उत्पादन और परिचालन व्यवस्था का खात्मा, मुद्रा और निजी सम्पत्ति का खात्मा, राजसत्ता का विलोप अपने आप हो जायेगा। लेकिन ख्रुश्चेव ने आकर समाजवाद का अर्थ निकाला सिर्फ उत्पादन की प्रचुरता। समाजवाद

से उनका तात्पर्य वर्गविहीन समाज से था। क्योंकि उन्होंने जिन लेखों से उद्धरण लिये हैं, वे शुरुआती दिनों के शास्त्रीय भाषा (classical language) में लिखे गये लेखों से है। उन दिनों एक बात प्रचलित थी कि समाजवाद का मतलब वर्गविहीन समाज है–जिसके चलते, जैसा कि मैं समझता हूं, ट्रॉटस्की में गलतफहमी पैदा हुई। ट्रॉटस्की ने सोचा, समाजवाद वर्गविहीन समाज है। समाजवाद यदि वर्गविहीन समाज हो, तो किसी एक देश में समाजवाद की स्थापना कैसे संभव है? इसे लेकर अनेकों गलतफहमियां पैदा हुईं। खुश्चेव भी जो धारणा लाये, वह यह है कि समाजवाद का मतलब है उत्पादन की प्रचुरता। अतएव, उन्होंने कहना शुरू कर दिया कि सोवियत संघ में यदि उत्पादन की प्रचुरता न रहे, तो क्या समाजवाद हुआ? यदि अब भी 'राशन' की जनवितरण प्रणाली कायम रहे, यदि अब भी लोगों को मुफ्त खाद्य उपलब्ध कराना संभव न हो, तब तो यह समाजवाद की विफलता है। यही धारणा उन्हें अर्थव्यवस्था के विकेन्द्रीकरण की ओर, 'लेबर इन्सेन्टिव' की ओर ले गयी।

निर्मम पूंजीवादी शोषण का निकृष्ट रूप है लेबर इन्सेन्टिव

इस लेबर इन्सेन्टिव के संबंध में मैं यहां एक बात कहना चाहूंगा। देखिए, क्रांतिकारी लफ्फाजी की आड़ में चाहे ये नक्सलपंथी हों या चाहे ये सीपीआई, सीपीआई(एम) वाले–ये सभी मजदूर आन्दोलन में इन्सेन्टिव की मांग कर रहे हैं। हमारी पार्टी के ट्रेड यूनियन नेताओं को भी देख रहा हूं कि वे भी इन्सेन्टिव प्रणाली की मांग कर रहे हैं। मेरा सवाल है, हम क्यों इन्सेन्टिव की मांग करेंगे? एक है आन्दोलन की फौरी जरूरत (exigency) से जब ऐसा करने के अलावा दूसरा कोई उपाय न हो। अर्थात इन्सेन्टिव जब आ ही रहा है, तब मजदूर आन्दोलन के जरिये इन्सेन्टिव की शर्त को उन्नत कर श्रमिक और ज्यादा सुविधा क्यों नहीं लेंगे। परन्तु यह काम करने के साथ-साथ इन्सेंटिव प्रणाली चालू करने के पीछे बुर्जुआ वर्ग के छिपे राजनैतिक व आर्थिक मंसूबों को तो उजागर कर देना होगा। यह दिखा देना होगा कि बुर्जुआ लोग जहां एक तरफ इनसेन्टिव की बात कर रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ अन्य कारखानों

में तालेबंदी कर रहे हैं। ये सारी बातें आंकड़े देकर ट्रेड यूनियन के नेतागण भी कहते हैं। परन्तु यदि उसके पीछे के मूल राजनैतिक व आर्थिक कारणों को न समझा जाये, तो मात्र इस तरह से आंकड़े देकर कहने से तो काम नहीं चलेगा। आंकड़े हमारे लिए क्यों जरूरी हैं? आंकड़े हमारे लिए जरूरी हैं सत्य को सहज ढंग से समझने के लिए, सिद्धांत को विशद रूप से समझने के लिए। सिद्धांत के द्वारा यदि वे सही मायने में सच्चाई की समझदारी हासिल न कर सकें, सच्चाई के बारे में यदि उनकी समझदारी आम लोगों की समझदारी की तरह ही रहे, तो मैं कहूंगा कि आंकड़े ढूंढ़ने की बेवजह जहमत उठाने की जरूरत क्या है? इससे यही होगा कि वे मजदूर आन्दोलन को सुविधावाद के दलदल में डुबो देंगे जैसा कि उन्होंने डुबो दिया है। लेबर इन्सेन्टिव चालू करने की बुर्जुआ वर्ग की साजिश को बेनकाब कर मजदूर आन्दोलन को सटीक रास्ते पर यदि वे संचालित न कर सकें, तो वे इन आन्दोलनों को शोषण मुक्ति की सही राजनैतिक मंजिल तक पहुंचा नहीं पायेंगे।

आप लोगों को याद रखना होगा कि इस लेबर इनसेन्टिव के जरिये इतना ही नहीं कि सिर्फ पूंजीवादी शोषण निर्मम हो रहा है, बल्कि यह घृणित (heinous) और अत्यंत निम्न कोटि पर पहुंच कर कुत्सित रूप ग्रहण करता जा रहा है। यानी इसके जरिये मालिक लोग कम उत्पादन की तमाम जिम्मेवारी मजदूरों के कंधों पर लाद रहे हैं, जबकि उत्पादन कम होने की असली वजह पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन संबंध तथा उत्पादिका शक्ति का द्वन्द्व है। सटीक विज्ञान सम्मत विश्लेषण से यह बात पकड़ में आयेगी कि पूंजीवादी व्यवस्था में जो अतिरिक्त मूल्य (surplus value) पैदा हो रहा है, उसे व्यक्ति मालिक हड़प ले रहा है–जिसकी वजह से पूंजीवादी देशों में बेरोजगारी की समस्या पैदा हो रही है। यही वजह है कि आज पूंजीवाद सही मायने में आमूल भूमि सुधार नहीं कर सकता और जिसकी वजह से विश्व पूंजीवादी बाजार में सापेक्ष स्थायित्व नहीं है। इसी वजह से पूंजीवादी देशों की अर्थव्यवस्था पर आज तीव्र मंदी का दबाव है, तमाम उत्पादन व्यवस्था में तीव्र संकट व्याप्त है। मजदूर वर्ग का

आन्दोलन सैद्धांतिक रूप से निहत्था हो जाने की वजह से, वही पूंजीवाद इस अवसर का लाभ उठाकर मजदूर वर्ग को बरगला कर संकट का तमाम बोझ उसके कंधों पर लाद रहा है। पूंजीपति दिखाना चाहते हैं कि उत्पादन इसलिए नहीं बढ़ रहा है, क्योंकि मजदूर काम नहीं करना चाहते हैं। आप याद रखिएगा, पूंजीवादी देशों में मजदूरों के काम करने की मानसिकता को नष्ट कर देने तथा काम के प्रति निरुत्साहित होने का कारण भी पूंजीवादी शोषण है, पूंजीवाद की सामाजिक नाइंसाफी है। जबकि उत्पादन न होने की तमाम जिम्मेवारी वे मजदूरों के कंधों पर लाद रहे हैं। एक तरफ वे मजदूरों पर काम का बोझ लाद रहे हैं, दूसरी तरफ मजदूरों के पैसे से जमा किये गये भारी बैंक बैलेन्स में से कुछ पैसे दान के नाम पर, दया के नाम पर देकर वे यह दर्शाना चाहते हैं कि वे कितने महान हैं! देश के प्रति उनमें कितनी मोहब्बत है, उत्पादन बढ़ाने के लिए उनमें कितनी आकांक्षा है! वे दिखाना चाहते हैं, मानो उत्पादन बढ़ाने की इस आकांक्षा से ही उन्होंने खुद मजदूरों की निष्क्रियता को दूर करने के लिए इन्सेन्टिव प्रणाली चालू की है।

जानते हैं, यह क्या है? अज्ञानता और अचेतना की वजह से जो बेबस और भूखा मजदूर यह नहीं जानता कि वह क्यों भूखा है, उसकी दुर्दशा का कारण क्या है, लेकिन पेट भरने के लिए पैसे कमाना चाहता है, दो पैसे के लिए अतिरिक्त काम करना चाहता है, उसे उस पैसे का लालच दिखाकर उस पर काम का अधिक बोझ लादना। अतिरिक्त समय (over time) काम कर, ज्यादा काम कर उत्पादन बढ़ाने का मतलब है काम का दबाव बढ़ाना–चाहे वह मशीन की सहायता से हो या बगैर मशीन के–अंततः उससे काम का दबाव बढ़ता है। कुछ आर्थिक सुविधा हासिल करवा देने के नाम पर मजदूरों पर काम का दबाव बढ़ाने का नाम है–'इन्सेन्टिव' प्रणाली। इसके जरिये मालिक लोग कहना चाहते हैं कि मजदूर उदासीन हैं, खुदगर्ज हैं, गैर जिम्मेवार हैं–जिसकी वजह से उत्पादन घट रहा है। इसलिए उन्हें इन्सेन्टिव दो, इन्सेन्टिव दे देने से वे ज्यादा काम करेंगे। यानी रुपये का लालच दो तो वे काम करेंगे,

मजदूर इन्सेन्टिव लेना चाहते हैं, अधिक रुपये लेना चाहते हैं, क्योंकि जो उन्हें मिलता है, उससे उनका पेट नहीं भरता। मेरा कहना है, आप मजदूरों को इन्सेन्टिव लेने को कहिए, लेकिन उसके साथ मजदूरों के काम की स्थिति को उन्नत करने के संघर्ष को जोड़िए। और, 'लेबर इन्सेन्टिव' मजदूरों के खिलाफ बुर्जुआ वर्ग की एक साजिश है। यह अत्यंत निष्ठुर व निर्मम शोषण का ही एक रूप है, मजदूरों के लिए अपमान है—उसके इस चरित्र की व्याख्या कीजिए और उन्हें समझाइए। हमारे देश में दूसरी जो पार्टियां मार्क्सवाद की बात कर रही हैं और मजदूरों की ओर से लड़ रही हैं, उनमें से किसी ने भी इन मौलिक मुद्दों को नहीं उठाया है। एकमात्र हमारी पार्टी ही इस मुद्दे पर ये बातें कह रही है। इन मुद्दों पर हमारी पार्टी गंभीरता से सोच रही है और इन मुद्दों को कुछ हद तक कुछ जगहों पर उठाने का प्रयास कर रही है। पार्टी के कार्यकर्ता, जो इन मुद्दों को मजदूरों के बीच ले जा रहे हैं, वे अपनी क्षमता, बुद्धिमत्ता व चेतना के स्तर के मुताबिक इन मुद्दों को उठा रहे हैं। इसको लेकर पार्टी में प्रयास जारी है। किसी एक कॉमरेड के मन में भी यदि इस मुद्दे को लेकर गलतफहमी रह जाती है, तो उसे दूर करने की कोशिश की जाती है। जो लोग मजदूर आन्दोलन में शामिल हैं, उनके मन में ये चीजें बिठायी जा रही हैं और यह काम कराया जा रहा है। हालांकि हम ऐसा नहीं कहते कि हमारे इस प्रयास में कोई कमी नहीं है, पर हम प्रयास कर रहे हैं।

समाजवाद में किसी भी तरह से उत्पादन बढ़ाने का खतरा

स्पष्ट है कि लेबर इन्सेन्टिव एक और खतरनाक चीज है, जिसे समाजवादी अर्थव्यवस्था में ख्रुश्चेव लाये, जिसके खिलाफ पूंजीवादी देशों में भी काफी महत्व के साथ मजदूर वर्ग की क्रांतिकारी विचारधारा के सटीक रास्ते पर संघर्ष चलाने की जरूरत है। लेबर इन्सेन्टिव, उत्पादन में बढ़ोतरी, उत्पादन की प्रचुरता आदि बातें उत्पादन के विकास के विज्ञानसम्मत नियम को बगैर सही तौर पर समझे कही जा रही हैं। समाजवादी उत्पादन संबंध के ढाँचे में, समाजवादी समाज व्यवस्था में उत्पादन के विज्ञानसम्मत नियम को

बरकरार रखते हुए–यानी उत्पादन के विकास के नियम का विज्ञान सम्मत रूप से, सही तरीके से अनुसरण करते हुए धीरे-धीरे समाजवादी स्वामित्व में तब्दील करने के खुद के कार्यक्रम को बरकरार रखते हुए–तमाम लोगों की ताकत को जुटाकर और उत्पादन के स्रोतों को–सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, भौतिक और प्राकृतिक–तमाम संसाधनों को जुटाकर और जितनी दूर तक संभव हो विज्ञान के तकनीकी विकास को उसके अनुसार ढाल (pattern) कर उत्पादन को बढ़ाना होगा। चूंकि लेनिन ने कहा है कि उत्पादन की प्रचुरता के बगैर समाजवाद नहीं आ सकता, इसलिए किसी भी तरह से उत्पादन को बढ़ाना होगा–बात इतनी आसान नहीं है। ख्रुश्चेव का कहना है कि उत्पादन की प्रचुरता के मामले में सोवियत संघ जब आज भी अमेरिका से पीछे है, तब यह कैसा समाजवाद है? जबकि वे समझ ही नहीं पाये कि उत्पादन के मामले में अमेरिका से पीछे रहने तथा कुल उत्पादन कम रहने के बावजूद सारी दुनिया को कम्युनिस्टों ने जो समाजवाद के पक्ष में कर लिया, उसकी ताकत दूसरी जगह निहित है। चेतना के निम्न स्तर की वजह से इस बुनियादी विषय को नहीं समझ पाने के चलते ही चिंतन के मामले में उनमें भटकाव आया है।

इसके अलावा सैद्धांतिक चेतना का निम्न स्तर जिस तरह से हठधर्मिता को जन्म देता है, उसी तरह संशोधनवाद को भी जन्म देता है। चेतना के इस निम्न स्तर ने ही आधुनिक संशोधनवाद को जन्म दिया है। फलतः सोवियत संघ ने ही उदारतावाद लाना शुरू किया है। बहाने के तौर पर वे कहते हैं कि स्तालिन के ज़माने में एक निर्मम कठोर नियंत्रित (regimented) शासन व्यवस्था थी, जिसके चलते व्यक्ति प्रतिभा को विकास का मौका नहीं मिला। उनकी ये सारी बातें शुरुआती समय की हैं। लोगों को अपने विचार व्यक्त करने का मौका नहीं मिला, अंदरूनी जनतंत्र का कोई अस्तित्व नहीं था–ये चीजें थीं या नहीं थीं, इस चर्चा में हमें जाने की फिलहाल जरूरत नहीं है। मुझे अपनी बात जरा संक्षिप्त करनी चाहिए। उदारतावाद लाने के मामले में पहले पहल उन्होंने यह कहा था कि वे व्यक्तिपूजावाद के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं, स्तालिन के

जमाने के इस नकारात्मक पहलू के खिलाफ संघर्ष कर रहे हैं। परन्तु अंत तक देखा गया कि वे स्तालिन की भाव मूर्ति के खिलाफ ही लड़ रहे हैं। व्यक्तिपूजावाद के खिलाफ लड़ने के लिए मुख्य रूप से जिस मूल जगह पर चोट करनी चाहिए थी, उस जगह को वे स्पर्श ही नहीं कर पाये। क्योंकि व्यक्तिपूजावाद आ रहा है चेतना के निम्न स्तर से, आ रहा है उत्पादन के ढंग (mode of producton) में जो परिवर्तन हो रहा है, उसके साथ सामंजस्य रखते हुए सांस्कृतिक क्रांति समान रूप से निर्मित नहीं होने के कारण जो विरोधात्मक द्वन्द्व पैदा हो रहा है–इसी द्वन्द्व से। इन कारणों को वे समझ नहीं सके और उनके आधार पर सैद्धांतिक चेतना का स्तर ऊंचा उठाने का संघर्ष नहीं किया। इसी वजह से वे समझ नहीं पाये कि किसी नेतृत्व–चाहे वह कोई व्यक्ति हो, कमेटी हो या फिर पार्टी हो–के प्रति अंधा समर्थन अवश्यंभावी तौर पर किसी न किसी रूप में व्यक्तिपूजा को जन्म देगा ही। इसे दूर करने का उपाय इस बात को घोषित करना नहीं है कि वे अंधे नहीं हैं, वे तो जनतंत्र की जीत का डंका बजा रहे हैं। जनतंत्र का यह जय डंका बजाते हुए ही आज दुनिया के तमाम पूंजीवादी देशों में फासीवाद आ रहा है। अतएव उनकी ये तमाम बातें साबित करती हैं कि मार्क्सवाद के मूल सिद्धांतों–जिनकी उपयोगिता आज भी बनी हुई है–का वे उल्लंघन कर रहे हैं यही हमारा और अन्य अनेकों का मत है।

सोवियत उदारतावाद ने ही चेकोस्लोवाकिया में संशोधनवाद को हवा दी

इसलिए, यह स्पष्ट है कि जिस व्यक्तिवाद को इतने दिनों तक राजसत्ता या सरकार का पृष्ठपोषण–संरक्षण नहीं मिला, लेकिन दबे रूप में समाज के अंदर मौजूद था–उसे स्तालिनके बाद के जमाने में सोवियत संशोधनवादी नेतृत्व की इन बातों व कार्यकलापों ने सिर उठाने का मौका दे दिया। सोवियत की इस घटना के परिणामस्वरूप ही चेकोस्लोवाकिया में इस व्यक्तिवाद को सिर उठाने का अतिरिक्त मौका मिल गया। साथ में उसे अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीवाद का समर्थन भी

मिला। सोवियत नेतृत्व के इस संशोधनवादी सिद्धांत की वजह से सोवियत संघ के अन्तर्राष्ट्रीय गठजोड़ (alignment) में भी स्वाभाविक तौर पर बदलाव आया। फलतः विदेशी बुद्धिजीवियों, अन्तर्राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का दबाव भी चेकोस्लोवाकिया पर पड़ना शुरू हुआ। इसने भी व्यक्तिवाद के रुझान के पीछे एक शक्ति के रूप में काम किया। परिणामस्वरूप इसी दरम्यान उनके अंदर जो व्यक्तिवाद सुविधा में तब्दील हो गया था, वही सड़ा-गला (rotten) व्यक्तिवाद कुत्सित रूप में प्रकट हुआ। उन्होंने सोवियत संघ के ही शब्दाडम्बरों के आधार पर संस्कृति में, आदर्श में गिरावट ला दी, वे राजनैतिक और आर्थिक क्षमता को केन्द्रीकरण से विकेन्द्रीकरण की ओर ले गये—यानी वे निकृष्ट किस्म के पेटी बुर्जुआ उद्देश्यहीन व्यक्तिवाद के ही अभ्यास में डूब गये। फलतः सोवियत नेता मुसीबत में पड़ गये। तब फिर वे ताकत का इस्तेमाल कर उसका दमन करने चल पड़े। क्योंकि तब भी मूल समाजवादी विशेषताएं सोवियत संघ में मौजूद थीं। देखिए, क्या विचित्र स्थिति है! एक ओर तो वे उदारवादी ताकतों को—जो दरअसल उदारतावाद की आड़ में, स्वतंत्रता, जनतंत्र आदि शब्दाडम्बरों की आड़ में प्रतिक्रांति की ताकतें हैं—उनको सिर उठाने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं; वहीं दूसरी ओर अपने अस्तित्व को बरकरार रखने के लिए वे ही बल प्रयोग कर उसे दबा रहे हैं। इस अस्तित्व को बरकरार रखने का मतलब अंदरूनी क्षेत्र में समाजवाद को बरकरार रखना, समाजवादी राजसत्ता को बरकरार रखना, अपनी सत्ता को बरकरार रखना, उसके छिन जाने के भय से भयभीत होना—इनमें से कोई भी हो सकता है। वास्तव में सोवियत संघ का मकसद क्या था, इसकी चर्चा मैं बाद में करूंगा। लेकिन इसके जरिये उन्होंने कम्युनिस्ट आन्दोलन को बड़ी खतरनाक स्थिति में पहुंचा दिया है। साम्यता और स्वतंत्रता के संबंध में कम्युनिस्ट विचारधारा और बुर्जुआ उदारतावादी मानवतावादी विचारधारा के अन्तर को वे गड्डमड्ड कर रहे हैं। इसके जरिये कम्युनिस्ट विचारधारा में जो बल है उसकी जो तर्क शक्ति है उसे वे पूरी तरह से ध्वस्त कर रहे हैं। मजदूर वर्ग और उसके क्रांतिकारी आन्दोलन को निहत्था कर रहे हैं। फलस्वरूप गलतफहमी की शिकार आम जनता में, यहां तक कि

अच्छे क्रांतिकारियों में भी जो व्यक्तिवाद सुप्तावस्था में रहता है, उसके दुष्परिणाम इस मौके का फायदा उठाकर सिर उठाने की कोशिश कर रहे हैं। जब इसने सिर उठाया तो इसे वे जबरन दबाना चाहते हैं। परिणामस्वरूप इसकी फिर उल्टी प्रतिक्रिया हो रही है।

सोवियत संघ द्वारा इस उदारतावाद का द्वार खोल दिए जाने के कुछ दिनों बाद से मुझे एक बात महसूस हो रही थी। यह मेरी धारणा है–बड़े गौर के साथ इस बिन्दु को देखिए। नेतृत्व में आने के कुछ ही दिनों बाद ख्रुश्चेव चले गये। क्यों चले गये? क्योंकि ख्रुश्चेव को अपने व्यक्तिगत आचार-व्यवहार व गतिविधियों के जरिये जिस उन्नत मर्यादा बोध को प्रतिबिम्बित करने की जरूरत थी, जिस कम्युनिस्ट नैतिकता व स्तर को प्रतिबिम्बित करने की जरूरत थी, वह उन्होंने प्रतिबिम्बित नहीं किया। उनके असामंजस्यपूर्ण व मनमौजी आचरण ने सभी की नजरों में उन्हें हेय बना दिया था। स्तालिन की भाव मूर्ति के खिलाफ संघर्ष करते हुए ख्रुश्चेव का आगमन हुआ था। इस संघर्ष में, जिस बात से उन्होंने उन निम्न चेतना सम्पन्न लोगों को खूब आकृष्ट किया था, यहां तक कि केन्द्रीय कमेटी को भी प्रभावित किया था, वह है, जनवादी केन्द्रीयता का यह मतलब कि–सभी का मिलकर पार्टी में निर्णय लेना और उस निर्णय के अनुसार काम करना। इस प्रक्रिया के उल्लंघन का मतलब है जनवादी केन्द्रीयता और सामूहिक नेतृत्व का उल्लंघन। हां, यह सही है कि सामूहिक नेतृत्व की जनवादी कार्य पद्धति इसी तरह की है और सामूहिक नेतृत्व की गारंटी भी निरंतर इस प्रक्रिया के तहत संघर्ष करने में है। परन्तु, कभी-कभी प्रतिकूल परिस्थिति में जब प्रचलित नियम मानकर काम करना संभव नहीं होता है, तो वैसी स्थिति में इस प्रक्रिया का परित्याग करना पड़ता है। क्या इसका मतलब यह है कि वैसी स्थिति में एक सही मार्क्सवादी पार्टी में सामूहिक नेतृत्व काम नहीं कर रहा होता है? नहीं, सामूहिक नेतृत्व वैसी स्थिति में भी विद्यमान रहता है। लेकिन रख पाना कठिन है, वह खत्म हो जा सकता है। इस तरह के खतरे की संभावना बनी रहती है। इसलिए किसी एक खास समय में निर्णय लेने की इस जनवादी प्रक्रिया के मौजूद न रहने से यदि कहा जाये कि सामूहिक नेतृत्व मौजूद नहीं

था, तो यह अतिसरलीकरण होगा। फिर, इस जनवादी प्रक्रिया के मौजूद रहने से ही सामूहिक नेतृत्व मौजूद रहेगा–यह भी सही नहीं है। इस तरह की धारणा से सामूहिक नेतृत्व को महज औपचारिक (formal) जनवादी नेतृत्व की धारणा में गिरा दिया जाता है। सामूहिक नेतृत्व कहने से यदि सिर्फ इसी प्रक्रिया को समझा जाता, तब तो कहना चाहिए, कि वे सभी बुर्जुआ पार्टियाँ भी जो हर साल सम्मेलन करती हैं, प्रस्ताव लेती हैं और कार्यक्रम तय करती हैं, जनवादी केन्द्रीयता की नीति के आधार पर निर्मित हुई हैं और उनमें सामूहिक नेतृत्व कायम है। नहीं, किसी भी बुर्जुआ या पेटी बुर्जुआ पार्टी में सामूहिक नेतृत्व नहीं रह सकता। रहना संभव भी नहीं है। वे अगर कोशिश भी करें, तो भी संभव नहीं है। वहां 'सामूहिक' शब्द एक लबादा (cloak) है, एक गलतफहमी पैदा करने वाला नारा है, जहां हकीकत कुछ और ही है।

व्यक्तिपूजा के खिलाफ नारों का मकसद व्यक्ति स्तालिनको कलंकित करना है

ख्रुश्चेव यह कहकर आये थे कि स्तालिन ने सामूहिक नेतृत्व को तबाह कर दिया। इसी के चलते स्तालिन में जो व्यक्तिगत तौर पर नकारात्मक पहलू थे, वे रह गये थे और उन्होंने जो किया, उसे रोकने का कोई उपाय नहीं था, दूसरों के लिए करने को कुछ नहीं था, क्योंकि लोकतंत्र नहीं था। जबकि ख्रुश्चेव ने आकर अपने कार्यों द्वारा बिल्कुल यही चीज की। जब वे भाषण देने के लिए मंच पर खड़े होते थे, तो वे पार्टी की मूल नीति या सिद्धांत की परवाह भी नहीं करते थे। किसी मुद्दे पर यदि पार्टी में उस वक्त तक निर्णय नहीं हुआ होता था, तो वे ऐसा नहीं कहते थे कि पार्टी ने अभी तक इस मुद्दे पर निर्णय नहीं लिया है, इस पर वे अपना विचार मात्र रख रहे हैं, इस विचार को वे किसी पर थोप नहीं रहे हैं, चर्चा के एक विषय के तौर पर सोचने के लिए रख रहे हैं, पार्टी का विचार बाद में आयेगा। वे ऐसा नहीं करते थे। वे पार्टी के फैसले पर चर्चा करते-करते उस के विरोध में भी जो मन में आता, कह देते थे। उसके बाद केन्द्रीय कमेटी और पोलित ब्यूरो

का लाजिमी काम होता था, उनकी उन बातों का समर्थन करना, उसके लिए नये ढंग से तर्क खड़ा करना, नये ढंग से तथ्यों को जुटाना–यह दिखाना कि ख्रुश्चेव ही सही हैं, क्योंकि वे पार्टी के नेता हैं। इस घटना ने विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के बुद्धिजीवियों के समक्ष सोवियत नेतृत्व को एक बदतर हालत में खड़ा कर दिया था। इस घटना ने दूसरे देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के साथ पारस्परिक संबंध के मामले में भी जटिलता पैदा कर दी थी। चीन के साथ संबंधों में जो कड़ुवाहट पैदा हुई थी–जिसे शायद इस ढंग से सोवियत नेतृत्व नहीं चाहता था–उसका मानना था कि इसके लिए ख्रुश्चेव का व्यक्तिगत आचरण काफी हद तक जिम्मेवार था। दरअसल चीन के साथ संबंधों में कड़ुवाहट पैदा होने की वजह दूसरी है। लेकिन जिनकी चेतना का स्तर निम्न है, वे सोचते हैं कि व्यक्तिगत आचरण-व्यवहार इस तरह का होने के चलते ही शायद यह कड़ुवाहट पैदा हुई है। सोवियत नेतृत्व के अंदर इस तरह की धारणा थी। ख्रुश्चेव के इस तरह के आचरण के चलते ही मौजूदा नेतृत्व ने उन्हें हटाया है।

व्यक्तिपूजावाद के खिलाफ ख्रुश्चेव के नारे का मकसद दरअसल व्यक्ति स्तालिन को कलंकित करना ही था। लेकिन स्तालिन एक व्यक्तित्व सम्पन्न दृढ़ निश्चयी व्यक्ति थे। उनका हर कदम सुविचारित था। ख्रुश्चेव हैं एक विदूषक, पूरी तरह से एक राजनैतिक जोकर। उनके संबंध में इस विदूषक शब्द का इस्तेमाल माओ त्से-तुंग ने किया है, मैंने भी किया। क्योंकि मुझे भी बहुत बुरा लगा है। हमारी पार्टी में बहुत सारे कॉमरेडों को भी बुरा लगा है। उनका आचरण, उनका हाव-भाव बहुत से कॉमरेडों को बुरा लगता है–इतने दिनों के कम्युनिस्ट मूल्यबोधों के साथ, कम्युनिस्ट रुचि के साथ बिल्कुल मेल नहीं खाता। जबकि वही व्यक्ति लोकप्रिय हो गया। बाद में कुछ दिक्कतों की वजह से मौजूदा सोवियत नेतृत्व ने उन्हें हटा दिया। उस समय ठोकर खाकर बहुत सारी बातें उन्होंने महसूस की अर्थात उनके कामों के कितने घातक नतीजे निकल रहे हैं–इन सभी के पीछे ठीक क्या कारण थे उनको समझ न सकने पर भी इन सभी आचरणों कार्यों का खराब नतीजा उन्होंने अपने तजुर्बे से

देखा था। एक ओर ख्रुश्चेव कह रहे हैं कि वे उदार (liberal) हैं, वे कठोरता के साथ कुछ भी नियंत्रण (regimentation) नहीं करेंगे। लेकिन दूसरी ओर जब कलाकरों एवं बुद्धिजीवियों ने अपनी इच्छानुसार काम करना शुरू किया, तो उन्होंने ही उन पर केन्द्रीय नियंत्रण थोप दिया था। दरअसल वे समझ ही नहीं पाये कि अधिकार, जनतंत्र आदि स्वीकार करना, निर्मम व कठोर अंधनियंत्रण बंद करना, या स्तालिनके ज़माने से पहले वाली जगह वापस लौट आना कहने का मतलब 'ऑथोरिटी' का नकारना, या 'ऑथोरिटी' को हेय करना नहीं है। केन्द्रीयता को हेय करना नहीं। इस 'केन्द्रीयता' शब्द का एक समय वे प्रयोग ही नहीं किया करते थे। आजकल फिर इसका प्रयोग कर रहे हैं और कारण दिखा रहे हैं कि लेनिन ने कहा था इसलिए।

तो, देखा जा रहा है कि चूंकि वे मूल कारण को ठीक-ठीक नहीं समझ पाये, इसलिए न केवल उनकी नीति ही अपरिवर्तित रही बल्कि इस नयी 'समझदारी' के धक्के से वह और भी जटिल तथा विकृत हो गयी है। दरअसल वे कुछेक मनगढ़ंत तर्कों को खड़ा कर थोड़ा-बहुत स्थिति के दबाव में पड़कर वापस लौटना चाहते हैं। लेकिन वापस लौटने का रास्ता नहीं पा रहे हैं। वापस लौटने के लिए वे जिस रास्ते को चुन रहे हैं, समस्या की प्रकृति को नहीं समझ पाने के चलते और निहित स्वार्थ (vested interest) के चलते वह और भी जटिल होता जा रहा है। कारण, मूल दृष्टिकोण गलत होने की वजह से उनका तजुर्बा गलत हो रहा है। फिर, उस गलत तजुर्बे को ही–'वे तजुर्बे से सीख रहे हैं'–इस गलत धारणा का शिकार होकर उसको मूल वक्तव्य के साथ जोड़ रहे हैं। नतीजतन, अपनी इस पुरानी संशोधनवादी धारणा के साथ इन तजुर्बों और बातों को मिलाकर जो भाष्य विवरण (exposition) वे प्रस्तुत कर रहे हैं, वह पूरी तरह से एक हास्यास्पद विषय बनता जा रहा है। अब वे पहले जैसा बिल्कुल नहीं कहते। इस संबंध में उनमें अनेक स्तरों में तब्दीली आयी है। प्रारंभ में ख्रुश्चेव ने कहना शुरू किया कि विभिन्न पूंजीवादी देशों में संसदीय प्रणाली से शांतिपूर्ण तरीके से क्रांति होगी। लेकिन बाद में आलोचना के सामने पड़कर

उन्होंने दूसरी बात कहनी शुरू कर दी थी। उन्होंने ऐसा नहीं कहा कि उनसे गलती हुई थी। उन्होंने कहा कि इसके जरिये उन्होंने जो समझाना चाहा है, वह है संसद को जनता की इच्छा के औजार में तब्दील कर वे समाजवाद ला सकते हैं और संसद को जनता की इच्छा के औजार में तब्दील करने की जरूरत है। क्यों जरूरत है? इस मामले में भी वे उपयुक्त तर्क नहीं दे सके। सिर्फ मनगढ़ंत तर्क द्वारा उसे तर्क ग्राह्य बनाने का प्रयास करते हुए उन्होंने कहा कि जुझारू आन्दोलन और राजनैतिक चेतना पर निर्भर करके वे संसद को जनता की इच्छा के औजार में तब्दील कर पायेंगे। सामान्य स्तर के कम्युनिस्टों ने सोचा, यह विचार पहले की तुलना में थोड़ा उन्नत है और वास्तव में यह उस पिछले विचार को ही उन्नत करने का एक प्रयास है। लेकिन उन्नत तो हुआ नहीं, बल्कि और भी खराब हो गया है। ऐसा हो रहा है चेतना के निम्न स्तर की वजह से। लेकिन कोई कह सकता है कि उन्नत करने का यदि कोई प्रयास नहीं रहा होता, तो ये सब वक्तव्य क्यों आते?

जैसे, युद्ध की अनिवार्यता के सिद्धांत (law of inevitability of war) के संबंध में ख्रुश्चेव ने शुरू में कहा, साम्राज्यवाद के बने रहने की स्थिति में भी शांति को बरकरार रख पाना संभव है–लेनिन के 'युद्ध की अनिवार्यता के सिद्धांत' की कार्यकारिता अब नहीं रही। बाद में उन्होंने कहा कि सिद्धांत की कार्यकारिता है, पर इस बात का मतलब यह नहीं है कि ऐसा अवश्यंभावी तौर पर होगा ही। हां, सिद्धांत की कार्यकारिता है, परन्तु उसकी समझदारी ऐसी नहीं है कि ऐसा होगा ही। फलतः हम शांति की रक्षा कर सकते हैं। उन्होंने आगे कहा, लेनिन ने जब इस युग को 'साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांति का युग' कहकर चिन्हित किया था, तब साम्राज्यवाद की भूमिका ही प्रमुख थी। लेकिन आज साम्राज्यवाद इतना कमजोर हो गया है कि उसमें टूटन पैदा हो गयी है, वह छिन्न-भिन्न हो गया है, टुकड़ों में बंट गया है (disintegrated)। इसलिए लेनिन का युग और मौजूदा युग पूरी तरह से अलग-अलग विशेषताओं के साथ खड़े हैं। वह था साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांति का युग। और आज हम जिस युग की बात कर रहे हैं, वह है छिन्न-भिन्न और

टुकड़ों में बंटे हुए साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रांति का युग। इसलिए लेनिन के युग के साथ आज के युग का एक विराट अंतर है। लेकिन इस विराट शब्द का क्या अर्थ है? किस क्षेत्र में वह विराट है? वास्तविकता यह है कि छिन्न-भिन्न होने के बावजूद साम्राज्यवाद अपनी सैनिक ताकत, विभिन्न देशों पर हमले की नीति और प्रतिक्रांति करवाने की साजिश तथा अपनी तमाम विशेषताओं के साथ एक विश्व व्यवस्था के रूप में आज भी खड़ा है। मूल बात है, साम्राज्यवाद आज भी विश्व व्यवस्था के तौर पर मौजूद है या नहीं? नहीं तो, प्रथम विश्वयुद्ध के समय जो संकट प्रकट होना शुरू हुआ था, उसी संकट के समय से साम्राज्यवाद में टूटन शुरू हो गयी थी–टूटने की प्रक्रिया तभी से शुरू हो गयी थी। मात्र इतना ही है कि बाद में उसकी मात्रा में बढ़ोतरी हुई है। लेकिन, देखा जा रहा है कि इस संबंध में लेनिन ने जो कहा था, उसके साथ एक नया शब्द जोड़कर वे पीछे लौटने की कोशिश कर रहे हैं, नये ढंग से व्याख्या करने की कोशिश कर रहे हैं।

हाल के लेखों में भी देख रहा हूं कि वे पहले के वक्तव्य को थोड़ा-बहुत पटलने की कोशिश कर रहे हैं। थोड़ी परेशानी के दबाव में पड़कर वक्तव्य को थोड़ा उन्नत करने, थोड़ा-बहुत चलने लायक बनाने, क्रांतिकारी की भाँति ठीक पहले वाली जगह पर वापस लौट आने की कोशिश करने का रुझान उनमें है। मुझे ऐसा महसूस हुआ है। मेरा अनुमान सही नहीं भी हो सकता है। इसलिए 'महसूस हुआ है' कह रहा हूं। यह काफी हद तक लाक्षणिक अनुमान है। कई लेखों में मैंने पाया है। लेकिन इसके चलते वक्तव्य का जो रूप सामने आया है, वह वास्तव में पहले के संशोधनवाद की तुलना में और भी खराब, और भी सस्ती लोकप्रियता पाने वाले ढंग का है और भी गलतफहमी पैदा करने वाला है। ऐसा होना स्वाभाविक है। क्योंकि असल समस्या यह नहीं है। अगर वापस लौटना है, तो उन्हें एक ही झटके में वापस लौटना होगा। अथवा ऐसा हो सकता है कि उनकी चेतना का स्तर और समझदारी सही जगह पर पहुंच जाये, तब वे इस ढंग से वापस लौट सकते हैं कि कोई समझ ही नहीं पाये। हालांकि इस ढंग से वापस लौटने में

खतरा है। इस ढंग से वापस लौटने का मतलब ही है कि वे अतीत की गलतियों-त्रुटियों और कुपरिणामों को लेकर चले हैं। अतीत के कुपरिणामों का अवशेष उनमें विद्यमान है। इससे वे मुक्त नहीं हैं। इसलिए देखा जा रहा है कि सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी परवर्ती समय में जो भी बातें क्यों न करे, साम्राज्यवाद के खिलाफ वे लड़ रहे हैं। इस तरह की उलूल-जलूल जो भी बातें क्यों न करें, स्वाभाविक तौर पर उनकी बातों में प्रतिबिम्बित मूल चिंतन-भावना पुरानी ही है। साम्राज्यवाद के रहते हुए भी शांति को बरकरार रख पाना संभव है—आजकल वे इस तरह की सैद्धांतिक बातें नहीं करते। ये बातें बिल्कुल पीछे चली गयी हैं। लेनिनवाद की कार्यकारिता है या नहीं—अब वे इस तरह की बातें नहीं करते। वे अब इन बातों का जिक्र न कर सामान्य लोकप्रिय ढंग से थोड़ा-बहुत साम्राज्यवाद के खिलाफ बोलते जा रहे हैं। वे चीन के खिलाफ भी बोल रहे हैं। चीन उग्र राष्ट्रीयतावादी है और वे स्वयं अन्तर्राष्ट्रीयतावादी हैं—इस बात को किस तरह प्रमाणित किया जाए उस का वे व्यर्थ प्रयास कर रहे हैं। उनके ये लेख बिल्कुल 'स्कूली बच्चे' के लेख की तरह अति सामान्य कोटि के हैं। नतीजतन काम नहीं दे रहे हैं। वे और भी निकृष्ट कोटि के संशोधनवाद एवं गलतफहमियों के शिकार हो रहे हैं।

प्रतिक्रांतिकारी अभ्युत्थान सोवियत उदारतावाद की चरम परिणति है

सोवियत की इस संशोधनवादी नीति की वजह से ही चेकोस्लोवाकिया में इस तरह की घटना घटी। स्तालिनके निधन के उपरांत ख्रुश्चेव नेतृत्व ने 'स्तालिन-पूजा' के खिलाफ संघर्ष के नाम पर—सर्वहारा अधिनायकत्व के समय में, स्तालिन के जमाने में नेतृत्व की ओर से यदि कहीं कोई गलती हो गयी हो, यांत्रिक दृष्टिकोण प्रतिबिम्बित हुआ हो या बेवजह कठोर आचरण हुआ हो, तो उन्हें ही मूलधन बनाकर और जोरशोर से उन्हीं को पेश कर, उनके खिलाफ लोगों के विक्षोभ को जगाकर—जो विक्षोभ भी थोड़ा-बहुत विचार-बुद्धि के संतुलन और चेतना का स्तर खूब ऊँचा न रहने के परिणामस्वरूप ही संभव है—उसको ही इस्तेमाल कर सोवियत संघ

से उदारतावाद की गेंद को लुढ़का दिया। इसे लुढ़का देने के चलते जो परिस्थिति पैदा हुई, उसे नियंत्रित करने की क्षमता सोवियत संघ में नहीं थी। उन्होंने क्या परिस्थिति पैदा कर दी थी? वह थी, प्रतिक्रांति की ताकतों को सिर उठाने का मार्ग प्रशस्त कर देना। इसके फलस्वरूप दुनिया की प्रतिक्रांतिकारी ताकतों के लिए एक अनुकूल माहौल पैदा हो गया। अब तक जो स्तालिन-विरोध सिर्फ उनके प्रचार के स्तर पर था, वहीं इस उदारतावाद पर अमल होने लगा तो उदारतावाद के नाम पर पूंजीवादी देशों के साथ उनके निर्बाध सांस्कृतिक आदान-प्रदान के चलते और सांस्कृतिक स्तर में जो गिरावट आ ही रही थी, उसके चलते विभिन्न क्षेत्रों में, यहां तक कि पार्टी और राजसत्ता में भी प्रतिक्रांतिकारियों के लिए घुसपैठ के असंख्य द्वार खुल गये। अर्थात पार्टी और राजसत्ता की नींव पर ही सरासर चोट करने के अनुकूल एक सर्वव्यापक लहर पैदा हो गयी। वास्तव में, हो भी यही रहा है। इस उदारतावाद के अमल की आड़ में एक सर्वव्यापक प्रतिक्रांति करने की कोशिश जारी है। इसके लिए सोवियत संघ की इन तमाम उदारतावादी गतिविधियों का प्रतिक्रांतिकारी शक्तियां जोर-शोर से प्रचार कर रही हैं और 'सोवियत संघ ने कम्युनिज्म की रक्षा की है' कहकर बड़ी वाहवाही करते हुए सोवियत संघ की भरपूर प्रशंसा भी कर रही हैं। सोवियत संघ के इन कार्यकलापों के चलते अब कम्युनिज्म सभी के लिए, यहां तक कि प्रतिक्रांतिकारियों के लिए भी खूब स्वादिष्ट (palatable) होगा। मैं समझ ही नहीं पाता कि कम्युनिस्ट आदर्श को प्रतिक्रांतिकारियों के लिए स्वादिष्ट बनाने की जरूरत क्या है? प्रतिक्रियावादियों को भी आजकल कम्युनिज्म अच्छा लगता है। जैसे डुबचेक (Dubcek) जो कर रहे हैं, उसे देखकर उन्हें लगता है कि यह बुरा नहीं है। इस डुबचेक को देखकर हमारे देश में पी. एस.पी. को लग रहा है कि यदि प्रयास किया जाय तो यहां के दक्षिणपंथी कम्युनिस्टों (अर्थात सीपीआई) को भी इस जगह पर लाया जा सकता है। यही वजह है कि दक्षिणपंथी कम्युनिस्टों के प्रति पी.एस.पी. ने एक अलग नजरिया अख्तियार किया है। उनकी इस उदारतावादी प्रवृत्ति को वे उत्साहित करना चाहते हैं। मैं ऐसा

नहीं कहता कि दक्षिणपंथी कम्युनिस्ट इसी बीच पूरी तरह से राष्ट्रीय कम्युनिस्ट बन गये हैं। यह राष्ट्रीय कम्युनिज्म दरअसल और कुछ नहीं राष्ट्रीय समाजवाद का ही दूसरा नाम है। हमारे देश की तथाकथित कम्युनिस्ट पार्टी का भी भविष्य में यही हश्र होगा।* काफी पहले सन 1957 में ही हमलोगों ने कहा कि यह कम्युनिस्ट पार्टी–यह अलग बात है कि इसका एक धड़ा अलग होकर क्या कर रहा है और अंत तक उसका क्या नतीजा होगा–यदि द्विदलीय लोकतंत्र की ओर चली जाती है, तो इन्हें केन्द्र कर या इनके साथ और कुछ सोशल डेमोक्रेटिक ताकतें मिलकर बिल्कुल लेबर पार्टी की तरह एक वामपंथी सोशल डेमोक्रेटिक धारा पैदा होगी और अलग दृष्टिकोण वाली एक दक्षिणपंथी धारा पैदा होगी। यही होगा उसका अंजाम। लेकिन, हमारे देश की अर्थव्यवस्था में लघु पैमाने पर उत्पादन (small production) के प्रभाव से तथा सापेक्ष अर्थ में उसका जो महत्व अभी भी मौजूद है, उसके चलते यह धारा शक्ल नहीं ले पा रही है। खैर जो भी हो, वह अलग विषय है।

फलतः उदारतावाद का जो द्वार ख्रुश्चेव ने खोल दिया, उसे अब वे एक जगह पर रोके रखना चाहते हैं। यह एक त्रासदी है। वे चाहते हैं, जितना उन्होंने कहा है, उदारतावाद पर अमल ठीक उतना ही हो। लेकिन उन्होंने जो कहा है, वह मार्क्सवाद-लेनिनवाद की प्राण सत्ता और जोश (ferver) को बर्बाद कर दे रहा है और वर्ग संघर्ष की पद्धति को नष्ट कर दे रहा है। इतने दिनों तक उदारतावाद की जो लहर दबी हुई थी, दुनिया के पैमाने पर उन्होंने उसका द्वार खोल दिया है और 'उदारतावादी' दृष्टिकोण की आड़ में तमाम जगहों पर प्रतिक्रांतिकारी ताकतों को कम्युनिस्ट पार्टी में घुसने का सुनहरा मौका प्रदान कर दिया है। उन्होंने पार्टी को कलुषित करने का मौका दे दिया है। अब यदि एक जगह पर कोई इसे बांध ना चाहे तो इसे कैसे बांधेगा? कोई व्यक्ति जब कोई रास्ता दिखा देता है, तो उस रास्ते पर वह जितने कदम आगे बढ़ता जाता है, उसके चेले भी उतने ही कदम चलेंगे–ऐसी बात नहीं है। वे और

* आगे चलकर उन्होंने इस पार्टी (सीपीआई) को पूरी तरह से राष्ट्रीय कम्युनिस्ट पार्टी की संज्ञा दी।

भी दस कदम आगे बढ़ सकते हैं। तब उन्हें अपने चेलों को यह कहने से काम नहीं चलेगा कि 'मेरे साथ-साथ चलना होगा'। सोवियत संघ ही उन्हें कह रहा है, दौड़ में जो जितना आगे जा सकता है, यानी उदारतावाद को अमल में लाते हुए जो जितना आगे बढ़ सकेगा और उसके समर्थन में जितनी तथाकथित युक्तिपूर्ण व्याख्या कर पायेगा–वह उतना ही बड़ा है, वही उसका महत्व है।

अब उनके द्वारा खुद पैदा की गयी इस परिस्थिति को दरकिनार कर ये लोग चेकोस्लोवाकिया की मौजूदा समस्या का हल कैसे करेंगे! मार्क्सवाद के अनुसार हम जानते हैं कि किसी भी देश की अंदरूनी परिस्थिति का सटीक तौर पर अध्ययन कर मूल नीति के साथ उसे संबंधित करके ही उसका समाधान करना होता है। चेकोस्लोवाकिया में जो घटनाएं घट रही हैं, वह द्वन्द्व का खास रूप है। आम मूल द्वन्द्व को दरकिनार कर, उसकी अवहेलना (over ride) कर इस द्वन्द्व को हल करने की पद्धति द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद नहीं है। इसलिए आम मूल नीतियों के आधार पर ही चेकोस्लोवाकिया के खास द्वन्द्व को हल करना होगा। ऐसा न करके एक खास विचित्र तरह की विशेषता पर अलग से बल (emphasis) देने का मतलब है आम नीति को बिल्कुल 'किन्तु-परन्तु' की स्थिति में तब्दील कर उसे महत्वहीन बना देना और उसके जरिये संशोधनवाद, उदारतावाद तथा पार्टी के अंदर बुर्जुआ प्रतिक्रांति की तमाम विकृत प्रतिक्रियावादी धारणाओं की घुसपैठ का द्वार खोल देना। सोवियत संघ के संशोधनवादी नेतृत्व ने यही किया है। सर्वहारा अधिनायकत्व की जरूरत अब नहीं रही, सोवियत संघ अब तमाम जनता का राज्य है–ये बातें उन्होंने ही कही हैं। फलतः सर्वहारा अधिनायकत्व के बगैर ही राज्य का अस्तित्व मौजूद है और वह तमाम जनता का राज्य है–इस तरह का विचित्र विश्लेषण उन्होंने ही किया है और वह भी रूस में बैठकर। आज डर से वे इन बातों की पुनरावृत्ति नहीं कर रहे हैं जैसे आज कल अनेकों पिता रास्ते पर अपने बच्चों की हरकतों को देखने पर अपने चेहरे को छिपाते हुए दूसरी ओर चले जाते हैं क्योंकि यदि बाप-बेटे आमने-सामने हो जायें, तो खतरनाक स्थिति पैदा हो जायेगी। ठीक उसी तरह सोवियत नेतृत्व

ने भी चेकोस्लोवाकिया में जिस बच्चे को जन्म दिया है, उसके चेहरे को देखकर, उसके आचरण को देखकर और 'बिगडैल बच्चे' की तरह उसकी उछलकूद को देखकर वे आतंकित हैं। इस आतंकित होने के दो कारण हो सकते हैं।

ऐसा हो सकता है कि सोवियत नेतृत्व अपने प्रभाव क्षेत्रों में सत्ता खोने के डर से आतंकित हो। यानी, 'वारसा संधि' के बल पर सोवियत के नेतृत्व में जो खेमा (bloc) तैयार हुआ है, वहां उसका प्रभाव शायद बरकरार न रह पाये। सोवियत नेतृत्व को यही डर है। इसलिए सोवियत संघ चाहता है कि ज्यादा दूर आगे न बढ़ा जाए। व्यक्ति स्वतंत्रता के मामले में चेकोस्लोवाकिया जो भी क्यों न करे, साम्राज्यवादियों के साथ सोवियत संघ का जो राजनैतिक विरोध है, उस विरोध में वह सोवियत संघ का एक मुख्य सहयोगी है। सोवियत संघ चाहता है कम से कम यह स्थिति बनी रहे, चेकोस्लोवाकिया इससे बाहर न जाये। लेकिन चेकोस्लोवाकिया जिस लाइन पर अमल कर रहा है, उससे क्या गारंटी है कि वह उस स्थिति में नहीं चला जायेगा! उसके साथ सोवियत संघ का क्या अंतर है? दोनों पक्षों के वक्तव्यों का सार यही है कि यदि चेकोस्लोवाकिया और सोवियत संघ एक दूसरे के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप न करें, तो सब मतभेद खत्म हो जायेंगे। मानो यही मूल समस्या है! एक दूसरे के अंदरूनी मामले में हस्तक्षेप न करने का सवाल तो सोवियत संघ ही ज्यादा उठा रहा है। और एक बात आज कल खूब प्रचलित है–वह है अंदरूनी हस्तक्षेप। वास्तव में इसका क्या मतलब है और इसे कम्युनिस्ट किस तरह से देखते हैं–इसको लेकर मैंने अन्यत्र चर्चा की है।

यह बात साम्राज्यवादी हमले से बुर्जुआ राष्ट्रीय सार्वभौमिकता की हिफाजत करने के सवाल पर सर्वहारा आन्दोलन में आयी है। इसका मकसद है साम्राज्यवादियों द्वारा दूसरे देशों पर खुल्लमखुल्ला हमला करने, दूसरे देशों के अंदरूनी मामलों में हस्तक्षेप करने, विभिन्न देशों के क्रांतिकारी आन्दोलनों में अराजकता पैदा करने, प्रतिक्रांति का निर्यात करने आदि की कार्रवाइयों पर रोक लगाना। विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों के पारस्परिक संबंध का रूप

क्या होगा, उसे तय करने के संदर्भ में यह सवाल नहीं आया है। उनके पारस्परिक संबंध का रूप है–वे एक दूसरे के साथ चर्चा कर रही हैं, उसके जरिये अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में नीतियों और सिद्धांतों को उन्नत कर रही हैं, उन्हें लागू कर रही हैं और इस प्रकार सम्मिलित प्रयास के जरिये विश्व समाजवादी व्यवस्था की ओर एक-एक कर वे सभी बढ़ रही हैं। यही उनका संघर्ष है। उनका संघर्ष एक दूसरे से अपनी स्वतंत्रता की हिफाजत करना नहीं है। यह सही है कि वे अपने मौजूदा स्वतंत्र अस्तित्व और स्वतंत्रता की हिफाजत कर रही हैं, परन्तु ऐसा वे इसलिए कर रही हैं ताकि देश के अंदर शीघ्रता से राष्ट्रीय बुर्जुआ और पेटी बुर्जुआ व्यक्तियों तथा ताकतों को अलग-थलग किया जा सके और समाजवाद, सर्वहारा जनवादी केन्द्रीयता और सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के साथ इन ताकतों का जो विरोध है, उसे सिर उठाने का मौका न देकर विभिन्न समाजवादी देशों के परस्पर मिलन के जरिये विश्व फेडरेशन के गठन की प्रक्रिया को तेज किया जा सके। इसलिए अंदरूनी मामले में हस्तक्षेप न करने का नारा और सवाल कम्युनिस्ट पार्टियों के पारस्परिक संबंधों का मुख्य मुद्दा नहीं है। यह सवाल कभी उठना ही नहीं चाहिए। फिर बड़ी पार्टी, नेतृत्वकारी पार्टी के तौर पर बात-बात में दूसरी पार्टियों के मामलों में हस्तक्षेप करना भी अन्याय है। यदि ऐसा किया जाता है, तो अवश्यंभावी तौर पर उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप वह उस देश में उग्र राष्ट्रवाद को जन्म देगा और पारस्परिक घनिष्ठ संबंध बनाने में बाधा पैदा करेगा। क्योंकि, समाजवादी क्रांति का राष्ट्रीय स्वरूप (form) अभी भी नि:शेषित नहीं हुआ है। यही हमारा विश्लेषण है।

इसलिए उदारतावाद का जो द्वार सोवियतसंघ ने खोल दिया, उसे बाद में रोकना चाहने पर भी वे नहीं रोक पा रहे थे। चेकोस्लोवाकिया में वास्तव में क्या घटना घटी थी? वहां ऐसा क्यों हुआ? चेकोस्लोवाकिया उद्योगों से सम्पन्न था, वह पिछड़ा हुआ देश नहीं था। उसकी प्रशासनिक व्यवस्था और पार्टी को इस तरह से विकृत मलिन कर और इस तरह विभिन्न वर्ग पार्टियों को पैदाकर व्यक्ति स्वतंत्रता के नाम पर बुर्जुआ स्वतंत्रता की धारणा प्रचलित

की गयी। राजसत्ता (state) को उन्होंने पार्टी से अलग कर दिया। वे कह रहे हैं, राजसत्ता ही चरम क्षमता (power) की अधिकारी है–जब तक राजसत्ता का अस्तित्व है, तब तक राजसत्ता के हाथों में ही चरम क्षमता है; राजसत्ता के बगैर पार्टी की कोई क्षमता नहीं है, पार्टी सिर्फ जनता की ओर से बात करेगी। इन धारणाओं के चलते राजसत्ता जैसे एक ताकतवर औजार पर बुर्जुआ लोगों का नियंत्रण स्थापित हो जायेगा–उन्होंने इस तरह की एक परिस्थिति पैदा कर ली। दरअसल इसके जरिये वहां के शासक गुट ने उग्र जनवाद, उग्र स्वतंत्रता की लाइन अख्तियार कर ली थी। बुर्जुआ व्यवस्था में भी ये बातें कहने का मतलब है उग्र जनवाद, उग्र स्वाधीनता के नाम पर बड़ी कुशलता के साथ निकृष्ट किस्म की तानाशाही लागू करना। यह उग्र जनवाद के लबादे में एक भयंकर निर्मम 'फासिस्ट ऑथोरिटी' को ले आना और उसे गहराई में स्थापित करना है। 'लिबर्टी' नामक निबंध में मिल ने जिन बिन्दुओं पर चर्चा की है, चेकोस्लोवाकिया का नेतृत्व हूबहू उन्हीं बातों को, अपनी लफ्फाजी में पेश कर रहा है। वे कह रहे हैं कि राजसत्ता पर पार्टी का कोई नियंत्रण नहीं रहेगा। यदि ऐसा हो जाय, तो राजसत्ता का चरित्र क्या हो जायेगा? यदि सर्वहारा का अधिनायकत्व नहीं रहे, तो उसकी परिणति क्या होगी? उस स्थिति का फायदा उठाकर वे राजसत्ता पर पूरी तरह से कब्जा कर उसके जरिये पूंजीवाद लागू कर देंगे; दूसरी तरफ पार्टी को क्रांतिकारी जामा पहनाकर जनता का दमन करने और क्रांतिकारी चिंतन-चेतना निर्मित होने के रास्ते को रोकने के औजार में पार्टी को पतित कर डालेंगे। यानी, दूसरे शब्दों में चेकोस्लोवाकिया में कम्युनिज्म के नाम पर पार्टी को फासीवाद लाने के औजार में तब्दील कर देंगे।

सोवियत नेतृत्व सर्वहारा अधिनायकत्व की धारणा को ही वस्तुतः गौण कर रहा है

इसलिए देखा जा रहा है कि चेकोस्लोवाकिया में जो घटना घट रही है, वह दरअसल प्रतिक्रांतिकारी अभ्युत्थान है, जिसका रास्ता सोवियत संशोधनवाद ने सभी देशों के लिए खोल दिया है। सभी

देशों में उन्होंने कम्युनिस्टों को गिराते हुए राष्ट्रीय कम्युनिस्ट के स्तर पर ला दिया है। इसका मतलब है, प्रगतिशील शब्दाडम्बरों की आड़ में कम्युनिस्ट पार्टी तमाम झूठे जनवादियों, धूर्त अफसरशाहों और ढोंगियों का जमावड़ा और अखाड़ा बनती जा रही है। ऐसी स्थिति में पड़ने के चलते, स्वाभाविक तौर पर वे पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका संबंधी मूल सिद्धांत को ही गड़बड़ा रहे हैं और जहां पार्टी की मुख्य भूमिका होनी चाहिए, वहां वे राजसत्ता की 'ऑथोरिटी' को प्रधानता दे रहे हैं। इस संबंध में सोवियत नेतृत्व जो वक्तव्य पेश कर रहा है, मैं समझता हूं कि वे खोखली बातें हैं। उन्होंने पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका की बात नहीं की है। और यदि मान भी लिया जाय कि पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को वे मानते हैं, तो भी उससे फर्क ही क्या पड़ता है? यदि वे कहते कि पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका है—तो क्या इतना कह देने से ही वे सही हो जाते हैं? दरअसल राजसत्ता को ठीक ऑथोरिटी की जगह पर स्थापित करने के चलते बुर्जुआ अर्थ में व्यक्ति-स्वतंत्रता आ ही गयी। दूसरी पार्टियां भी इसी रास्ते पर आ गयीं। चीन में नवजनवादी क्रांति के बाद अन्य पार्टियों ने काफी दिनों तक वहां की राष्ट्रीय कंसल्टेटिव कौंसिल और राष्ट्रीय कंसल्टेटिव कांग्रेस में काम किया है। लेकिन वहां कम्युनिस्ट पार्टी के साथ बराबरी के दर्जे पर उन्हें नहीं रखा गया। उन्हें जिस किसी भी तरह की आलोचना का अधिकार नहीं दिया गया। बल्कि नेशनल कॉन्फ्रेंस या कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यक्रम को कार्यान्वित करना ही उनका काम था। उन्हें यह शपथ लेनी होती थी कि कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय उद्योगों में जो समाजवादी आर्थिक कार्यक्रम लिया गया है और समाजवाद लाने का पार्टी का जो कार्यक्रम है, उसे कार्यान्वित करने में वे मदद करेंगी। ऐसा करने के बाद ही उन्हें आलोचना करने का अधिकार मिलता था।

चेकोस्लोवाकिया में वह अधिकार दे देते तो कोई दिक्कत नहीं थी। इसलिए चीन की परिस्थिति इससे अलग है। लेकिन चीन में इस प्रक्रिया को अपनाने का तात्पर्य क्या था? राज्य क्रांति संगठित करने के स्तर में जहां दूसरी पार्टियों का अस्तित्व नकारा नहीं जा

सका, वहां उनके साथ समझौता कर और एकता बनाकर क्रांति करनी पड़ी है। वहां नेशनल कंसल्टेटिव कौंसिल और कांग्रेस पहले से प्रचलित संयुक्त मोर्चे की धारावाहिकता में आयी हैं। जब तक इन पार्टियों की भूमिका को नि:शेषित (exhausted) कर सिट्ठी की तरह इन्हें जनता से अलग-थलग नहीं कर दिया जाता अथवा साम्यवादी आन्दोलन में इन्हें पूरी तरह से समाहित (absorb) नहीं कर लिया जाता और पार्टी के तौर पर ये पूरी तरह से अकार्यकारी नहीं हो जाती, तब तक यह विशेषता काम करती रहती है। यानी यह अन्य पार्टियों की भूमिका को नि:शेषित करने की प्रक्रिया है। और, चेकोस्लोवाकिया में जो हो रहा है, वास्तव में वह कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व को ही नि:शेषित (exhaust) करने की वास्तविक प्रक्रिया है। यहां तक कि पार्टी नेतृत्व और उसकी नेतृत्वकारी भूमिका की बात को स्वीकार करके ही यह किया जा रहा है। जैसा कि सोवियत संघ में हो रहा है। सोवियत संघ ने इस तरह से स्वीकार नहीं किया है। लेकिन, सोवियत संघ के संशोधनवादी नेतृत्व ने सर्वहारा अधिनायकत्व के महत्व को गौण करने के जरिये तथा पार्टी को सर्वहारा वर्ग की पार्टी से जनता की पार्टी में और राज्य को सर्वहारा वर्ग के राज्य से जनता के राज्य में तब्दील करने के जरिये दरअसल पार्टी की नेतृत्वकारी भूमिका को ही गौण कर डाला है। इसके साथ ही उदारतावाद पर अमल तथा व्यक्ति-पूजा के खिलाफ संघर्ष के नाम पर उन्होंने उग्र जनतंत्र के रुझान का द्वार खोल दिया है। नतीजतन, कुल मिलाकर उन्होंने एक ऐसी परिस्थिति पैदा की है, जिसमें एक ओर इस उदारतावाद तथा उग्र जनतंत्र के रुझान देश के अंदर बढ़ रहे हैं और बढ़ते-बढ़ते जब राजसत्ता की 'अथोरिटी' को व्यवहारत: नकारा जा रहा है, तभी नेतृत्व उसका गला घोंट कर उसे मार रहा है। परिणामस्वरूप, दोनों ओर से इसके नतीजे बुरे निकल रहे हैं। एक ओर प्रचार, प्रोपगैण्डा के जरिये प्रतिक्रांति की शक्ति उदारतावाद पर अमल बढ़ रहा है, तो दूसरी तरफ कम्युनिज्म की हितरक्षा के नाम पर नृशंस दमन-उत्पीड़न जारी है। वर्तमान स्तर में जहां तनिक भी ताकत इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं थी, वे खुद वैसी परिस्थिति पैदाकर निरंतर ताकत के

इस्तेमाल द्वारा अपने प्रभाव को बरकरार रखना चाहते हैं और दुनिया के दूसरे देशों के सामने समाजवाद तथा क्रांति की हिफाजत का बहाना बना रहे हैं। इसलिए कम्युनिज्म की जो महानता थी, उसे वे बर्बाद करने में मदद कर रहे हैं। इससे दोनों ओर से नुकसान हो रहा है।

इसलिए चेकोस्लोवाकिया में उदारतावाद तथा संशोधनवाद का जो रुझान पैदा हुआ था, वह वास्तव में बड़ी तेजी से उदारतावाद की आड़ में विश्व जनमत, यहां तक कि कम्युनिस्टों की एक बड़ी तादाद को भ्रमित करके बड़ी चतुराई के साथ शैतानों की तरह–प्रतिक्रांति करवाने के प्रयास के अलावा और कुछ नहीं है। ऐसी स्थिति में सोवियत नेतृत्व प्रतिक्रांति की आशंका से भयभीत होकर क्रांति की हिफाजत के लिए ही वहां गया है–यह बात तभी कही जा सकेगी, जब देखा जायेगा कि सोवियत नेतृत्व खुद अपने मौलिक भटकावों को सुधारने के संघर्ष में लिप्त है, क्योंकि उसके भटकावों से ही चेकोस्लोवाकिया में इस सिद्धांत (theory) का जन्म हुआ है। बल्कि यह कहा जा सकता है कि इस मामले में वे सोवियत संघ से भी कई कदम आगे बढ़ गये हैं। इसलिए सोवियत संघ को एक झटके में वापस लौटना होगा। अथवा यदि वे इस तरह के कौशल से वापस लौटना चाहते हैं कि दूसरों को पता न चले तो इसके कुछ सुनिश्चित संकेत एवं लक्षण दिखने चाहिए। यानी ये संकेत और लक्षण बिल्कुल दूसरों की पहुंच से बाहर रहने से काम नहीं चलेगा। अथवा, मैं जिस तरह से थोड़ा-बहुत मनोवैज्ञानिक, थोड़ा-बहुत पद्धतिगत विश्लेषण कर कह रहा हूं कि 'हो सकता है'–इस तरह से कहने से भी काम नहीं चलेगा। इससे कोई किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सकता। हममें वह संयम बोध है; मैं कह रहा हूं–'हो सकता है'। इसका मतलब यही सही है–ऐसा मैं नहीं कह सकता क्योंकि वह मेरा मनोगत (subjective) निर्णय हो सकता है। इसलिए यदि वे वापस लौट आना चाहते हैं, तो उनके इस वापस लौट आने का निश्चित तौर पर पता चल सके, इस तरह के कुछ लक्षण दिखने चाहिए। यानी सैद्धांतिक अभिव्यक्ति और कुछ सुनिश्चित कदमों के तौर पर

उसकी एक वास्तविक अभिव्यक्ति होनी चाहिए–जिससे एक स्पष्ट संकेत मिले कि वे वापस लौटना चाहते हैं। या तो वे मौजूदा स्थिति से सीधे तौर पर गलती कबूल कर वापस लौट सकते हैं, नहीं तो उनमें कुछ अहम् (ego) रहने से वे हठात् वापस न लौटकर चतुराई के साथ भी वापस लौट सकते हैं। मैं ऐसा नहीं मानता कि यदि कोई वापस लौटना चाहता है, तो उसे वह बात कहनी ही होगी। या तो वे अहम् से पूरी तरह से मुक्त होकर वापस लौटें या फिर तनिक भी अहम् के साथ यदि वे लौटना चाहें, तो उन्हें वापस लौटने की जरूरत नहीं है–मैं ऐसा नहीं सोचता। मैं कहता हूं वापस लौट आना सबसे ज्यादा जरूरी है। यदि वे अहम्-मुक्त होकर वापस लौट सकें, तो वही सही कम्युनिस्ट आचरण होगा। लेकिन यदि वे अहम् लेकर ही तनिक टेढ़े-मेढ़े रास्ते से भी वापस लौट कर आ जायें, तो भी मैं कहूंगा कि 'वापस लौट कर आइए', कम से कम क्रांति की रक्षा तो हो। उनके टेढ़े-मेढ़े रास्ते से वापस लौटने के बारे में बाद में सोचा जायेगा। वे वापस लौटें तो सही। यदि वे वापस लौट आयें तो कम्युनिस्ट आन्दोलन बर्बादी से काफी हद तक बच जायेगा। उनका वापस लौटना यदि गुप-चुप तरीके से भी होता है, तो भी मैं उसका स्वागत करूंगा। साथ ही मैं उनके इस चतुराई से वापस लौटने की आलोचना भी करूंगा। और यदि ऐसा होता है कि वे खुले मन से पूरी तरह से अपनी गलती कबूल करते हुए, जिस किसी से उन लोगों ने जो कुछ भी सीखा है, उनको पूरी मान्यता देते हुए वे वापस लौट आते हैं, तो इसका मतलब ही हुआ कि वे अहम्, झूठे मर्यादा बोध और उग्र राष्ट्रवाद की भावना–वह जिस भी रूप में क्यों न हो–उससे पूरी तरह से मुक्त होकर कम्युनिस्ट मूल्यबोध को बुलन्द कर पाये हैं।

सोवियत संघ चेकोस्लोवाकिया में क्रांति की हिफाजत करने नहीं गया था

ऐसे में, सोवियत संघ जब तक अपनी कथनी और करनी से ऐसा नहीं दिखा देता, तब तक उसके इस तर्क को नहीं माना जा

सकता कि चेकोस्लोवाकिया का नया शासक गुट प्रतिक्रांति का मार्ग प्रशस्त कर रहा था, इसलिए वह क्रांति की हिफाजत के लिए वहां गया था। यह पहली बात है। दूसरी बात यह है कि सोवियत नेतृत्व यदि अपनी नीति नहीं बदलता है, तो वहां जाने के पीछे वह जो यह बहाना दिखा रहा है कि चेकोस्लोवाकिया का नया शासक गुट काफी ज्यादती कर रहा था और साम्राज्यवाद से सांठगांठ कर रहा था–इनकी इस बात की भी कोई कार्यकारिता नहीं रहती। क्योंकि ऐसे में सोवियत संघ के वहां जाने से भी क्या निदान होगा? हां, सोवियत संघ यदि ऐसा तर्क देता तो माना भी जा सकता था कि वह खुद संशोधनवादी है तो जरूर, लेकिन वह कम से कम अभी भी पूरा अमेरिका जैसा साम्राज्यवादी नहीं बन गया है, जो विभिन्न देशों में प्रतिक्रांति का निर्यात करता फिर रहा है। आज भी संशोधनवादी कम से कम खुल्लमखुल्ला वैसी भूमिका अदा नहीं कर रहे हैं। तब तो क्रांतिकारियों के लिए तुलनात्मक विचार के अर्थ में–द्वन्द्व और द्वन्द्व के बीच अंतर के अर्थ में–साम्राज्यवाद से सोवियत संघ की स्थिति तो तनिक अच्छी है। सोवियत नेतृत्व यदि इस तरह से कहता, तो हम लोग कहते कि हां, यह ठीक है। लेकिन इसके लिए उसका समर्थन करने का कोई औचित्य नहीं मिल जाता। यह सही है कि अमेरिका की बजाय सोवियत संघ के साथ रहने में नुकसान कम है और उस कम नुकसान के अर्थ में सोवियत का समर्थन किया जा सकता है। परन्तु उस मामले में इस लफ्फाजी का तो समर्थन नहीं किया जा सकता कि सोवियत नेतृत्व क्रांतिकारी धारा का समर्थन कर रहा है, उसकी हिफाजत कर रहा है। यदि इसे साबित करना है, तो पहले सोवियत नेतृत्व को खुले आम इस गलती को कबूल करना होगा कि वे चेकोस्लोवाकिया में जो 'समाजवाद गया-गया' का शोर मचा रहे हैं, वह प्रतिक्रांतिकारी ताकत को रोकने के लिए नहीं है। उनकी गतिविधियां भी यह साबित नहीं करतीं। वे सिर्फ विश्वजनमत को भ्रमित करने के लिए ऐसा कह रहे हैं। यदि ऐसा नहीं है, तो सोवियत नेतृत्व डुबचेक और सबोडा (Svoboda) के साथ बैठकर क्यों सलाह-मशविरा कर रहा है? उनके शासन में ही तो ये घटनाएं हुई हैं। उसी प्रतिक्रियाशील

गुट के साथ सोवियत नेतृत्व बातचीत पर आना चाहता है और उसी के साथ ही समझौता करना चाहता है। इसका मतलब क्या है? क्या इससे पता नहीं चलता कि ज्यों ही वे वादा करेंगे कि वे सोवियत प्रभाव के बाहर नहीं जायेंगे, त्यों ही उनमें समझौता हो सकता है? त्यों ही वहां से हो सकता है कि सोवियत सेना चली आये? बस इतना ही मानने से काम चल जायेगा कि वैसी कुछ नयी बातें या शब्द, जिनका वे प्रयोग कर रहे हैं, उनका प्रयोग वे नहीं करेंगे। लेकिन सारे काम वे करते ही जायेंगे। यानी चेकोस्लोवाकिया का नया शासक गुट प्रतिक्रांतिकारी लाइन लेकर चलते हुए खूब ज्यादती करता जा रहा है, ऐसा नहीं किया होता तो सोवियत को कोई खास एतराज नहीं था। बल्कि वहां से लौटकर चेकोस्लोवाकिया यदि मार्क्सवाद की राह पर चीन* के पक्ष में चला जाये, तो सोवियत नेतृत्व चेकोस्लोवाकिया पर और भी ज्यादा खफा होगा।

डुबचेक आदि के आचरण पर भी यदि आप गौर करें, तो पायेंगे कि वे शुरू से ही कह रहे हैं कि सोवियत के हस्तक्षेप का प्रतिरोध किया जायेगा, लेकिन हिंसा के रास्ते नहीं। उन्होंने सेना को हथियार उठाने से मना किया है। यानी यह काफी हद तक भाई-भाइयों में झगड़े जैसा है—वे खुद इस झगड़े का निपटारा कर लेंगे। वैसे में हथियार लेकर लड़ने से परिस्थिति और जटिल हो जायेगी। उसके चलते वे शायद भाइयों के बीच आपसी झगड़े का निपटारा नहीं कर पायेंगे। इसलिए ऐसा करने से उन्होंने माना किया है। इन तमाम घटनाओं से ही यह साफ है कि प्रतिक्रांति की आशंका से क्रांति की हिफाजत करने के लिए सोवियत संघ वहां गया है—यह इस घटना का असली चरित्र नहीं है। इसका असली चरित्र है, सोवियत के प्रभावाधीन पूर्वी यूरोप के देशों में अवश्यंभावी तौर पर जो संकट इस घटना के चलते दिखाई देगा ही, उससे बचने के लिए, पूर्वी यूरोप के देशों की कॉन्फ्रेंस से सोवियत संघ पर यह दबाव आया है। यदि ऐसा नहीं होता, तो शायद सोवियत संघ यह सब करता ही नहीं। दूसरी बात है, सोवियत संघ को इस हस्तक्षेप के पहले चेकोस्लोवाकिया के साथ बैठक में कम से कम खुले तौर

* तब चीन की पार्टी पर संशोधनवादियों का कब्जा नहीं हुआ था।

पर यह आश्वासन नहीं मिला, या वे अपने ढंग से समझ नहीं पाये कि चेकोस्लोवाकिया और चाहे जो भी करे, पर सोवियत प्रभाव के बाहर नहीं जायेगा और इसे लेकर अधिक ज्यादती नहीं करेगा। कम से कम इस तरह की शर्तों को लेकर ज्यादा अड़ेगा नहीं, जिन शर्तों का परिणाम तमाम पूर्वी यूरोप के देशों के उदारतावादी दृष्टिकोण पर बिजली की तरह काम करेगा। चेकोस्लोवाकिया यदि ऐसा न करे तो क्रांतिकारी लफ्फाजी की आड़ में वे उदारतावाद पर जितना भी अमल क्यों न करें, उससे कोई दिक्कत नहीं है। क्योंकि सोवियत नेतृत्व खुद अपने देश में ऐसा कर रहा है। इसलिए इसमें घबराने की कोई बात नहीं है, लेकिन चेकोस्लोवाकिया जो सब शब्द प्रयोग कर रहा है, जिस तरह की बातें कर रहा है, जिस तरह के काम कर रहा है, उससे एक कलंक का टीका लगाने वाली घटना घट रही है। इसलिए चेकोस्लोवाकिया के साथ सोवियत संघ इस प्रकार का एक वैसा समझौता करना चाहता है ताकि चेकोस्लोवाकिया ऐसा न करे।

इसलिए देखा जा रहा है कि यदि चेकोस्लोवाकिया सोवियत संघ के साथ एक संधि कर यह गारंटी दे और सोवियत संघ को लगे कि वह साम्राज्यवाद की ओर नहीं जायेगा और इतने खुले तौर पर ये बातें कहकर पड़ोसी पूर्वी जर्मनी और पोलैंड तथा पूर्वी यूरोप के अन्य देशों में इस मुद्दे को जटिल नहीं बनायेगा, तो वह अपने अंदरूनी क्षेत्र में जो करना चाहे करे, उससे सोवियत संघ को कोई एतराज नहीं होगा। चेकोस्लोवाकिया के साथ अगर इस तरह का कोई समझौता किया जाता है, तो देखा जायेगा कि प्रतिक्रांति की लफ्फाजी वगैरह के बावजूद चेकोस्लोवाकिया के मौजूदा शासक गुट को सत्ता में रखकर ही सोवियत संघ नेतृत्व पुनः सेना वापस बुलाकर उसके साथ मधुर संबंध बनायेगा। इसलिए, 'प्रतिक्रांति को रोकने के लिए सोवियत वहां गया है'—यह ऐसी घटना नहीं है। अतएव, इस बिन्दु पर चाओ एन लाई का यह वक्तव्य कि चेकोस्लोवाकिया और सोवियत संघ के बीच यह द्वन्द्व मुख्यतः अंदर के संशोधनवादी शासक गुट के साथ बाहर के संशोधनवादी शासक गुट का द्वन्द्व है—यह बात तो ठीक है। लेकिन इस पर चीन का यहां तक कहना

कि चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ के हस्तक्षेप को बिल्कुल हिटलर के हमले के साथ या वियतनाम में अमेरिका के सैनिक हस्तक्षेप के साथ तुलना की जा सकती है–ऐसा कहना मैं समझता हूं कि अतिशयोक्ति है और अतिसरलीकरण भी। मैं इस तरह से कहने का विरोधी हूं। लेकिन चीन की इस बात के साथ मैं सहमत हूं कि सोवियत संघ के आचरण के साथ क्रांति की हिफाजत करने का कोई संबंध नहीं है। लेकिन मैंने पहले ही कहा था कि उनमें वापस लौटने का एक संकेत है। इसलिए आलोचना वैसी होनी चाहिए जो उनके वापस लौटने के पक्ष में शायद एक सुयोग पैदा कर दे और वैसा ही प्रयास करना चाहिए। पहले भी उन्हें वापस लौटा लाने की बार-बार कोशिश हुई है, इस बार भी वह कोशिश शुरू हो सकती है। पहले उन्हें रास्ता नहीं मिला, इसलिए इस बार भी उन्हें रास्ता नहीं मिलेगा–ऐसा मैं पहले ही नहीं कह सकता। हां, यह बात सही है कि चेतना का जो स्तर वे प्रदर्शित कर रहे हैं, उससे रास्ता न मिलने की संभावना ही उनके लिए ज्यादा है। मुझसे यदि कोई पूछे तो मैं कहूंगा कि मेरे विचार से उन्हें रास्ता न मिलने की संभावना 96-97 प्रतिशत है। पहले की ही तरह वापस लौटने की कोशिश में उन्होंने जिस तरह से मुद्दे को जटिल बना दिया है, शायद इस बार वे उसे और जटिल बना देंगे तथा और भी ज्यादा विभ्रान्ति पैदा कर देंगे। लेकिन यदि अनुकूल माहौल मिले तो वापस लौटने की संभावना 3-4 प्रतिशत तो है।

चीन यदि सोवियत संघ को ठेस न पहुंचाकर विश्लेषण समृद्ध चर्चा करता, वहां की अंदरूनी ताकतों को नये ढंग से सोचने की जगह पर ले जाने के ढंग से आलोचना करता, तो वापस लौटने की कुछ संभावना रहने से उस मामले में वह मदद कर सकता था। यानी चीन की आलोचना यदि ऐसी होती कि वह सोवियत नेतृत्व को दिखाकर कहता कि देखो, चेकोस्लोवाकिया में जो हो रहा है, वह ख्रुश्चेव की ही लाइन है, जिस संशोधनवाद का द्वार सोवियत नेतृत्व ने खोल दिया है, जिस उदारतावाद पर सोवियत संघ अमल कर रहा है–यह उसी का नतीजा है। सिर्फ अंतर यही है कि वे अपने संशोधनवादी वक्तव्यों, गतिविधियों के ढंग और उदारतावाद

के अमल की व्यापकता में सोवियत संघ से भी कई कदम आगे निकल गये हैं। अन्यथा मूल नीति के मामले में सोवियत संघ जिस रास्ते पर गया है, चेकोस्लोवाकिया भी उसी रास्ते पर गया है। सोवियत संघ ने ही यह द्वार खोल दिया है। और, आज जो सोवियत नेतृत्व कर रहा है, यदि उसकी यह बात मान लें कि वे कम्युनिज्म की हिफाजत के लिए ही वहां सैनिक हस्तक्षेप करने जा रहे हैं, तो जो बात सामने आती है, वह एक ज़माने में ट्रॉटस्कीवाद के नाम से जो चीज जानी जाती थी, उसी तरह की है। यानी सैनिक हस्तक्षेप कर या सेना भेजकर दूसरे देश को दखल करना–जिस रास्ते से कम्युनिस्टों ने कभी भी किसी देश में क्रांति को फैलाने की बात नहीं सोची। एक देश की राजसत्ता पर आसीन रहते हुए दूसरे देश की अंदरूनी क्रांतिकारी ताकत को हर तरह से मदद करने की बात कम्युनिस्टों ने कही है, जरूरत पड़ने पर स्वंयसेवक भेजने की बात कही है, क्रांति के समर्थन में दूसरे देश में स्वयंसेवक भेजने के बारे में उन्होंने सोचा है। जब किसी देश पर विदेशी सेना हमला करती है, तो उसे रोकने के लिए क्रांति के समर्थन में वहां सेना भेजी जाती है–वह अलग बात है। वह है उस देश की क्रांति को विदेशी हमले या हस्तक्षेप से रक्षा करने के लिए। लेकिन सैनिक हस्तक्षेप कर इस तरह से किसी देश को दखल कर क्रांति की हिफाजत करने की बात कम्युनिस्टों ने कभी नहीं सोची।

कम्युनिस्टों के लिए आलोचना का सुनिश्चित उद्देश्य होना चाहिए

आलोचना करते वक्त एक और महत्वपूर्ण बात याद रखनी चाहिए। वह यह कि सोवियत संघ में जो संशोधनवाद आया, उसे जान-बूझकर लाया गया–यह बात एक दो व्यक्ति के मामले में कही जा सकती है, लेकिन तमाम जनता और शासन व्यवस्था पर ऐसा ठप्पा नहीं लगाया जा सकता। यह हो सकता है कि कोई-कोई नेता षड्यंत्र में शामिल रहे हों। लेकिन मैं इस बात को भूल नहीं सकता कि जो नेता मौजूद हैं, उन नेताओं के प्रति सोवियत जनता में आस्था और विश्वास है–चाहे वह उग्र राष्ट्रवादी मानसिकता के

चलते हो, राष्ट्रीय अभिमान के चलते हो या फिर किसी अन्य कारण से हो। लम्बे अर्से से प्रचलित विरासत (heritage) या विश्वास के चलते हो या फिर पार्टी के प्रति वफादारी के रूप में ही हो, नेताओं के प्रति उनमें ममत्व है। यह ममत्व विचार बुद्धि शून्य, अंध ममत्व हो सकता है, लेकिन ममत्व है। यहां मेरे लिए यह प्रधान विषय नहीं है कि वे षड्यंत्र में लिप्त हैं या नहीं। यह बात तब तय की जायेगी जब किसी खास व्यक्ति के खिलाफ कार्रवाई की जायेगी, तब इसकी छान-बीन करेक पता लगाया जायेगा। अभी जरूरत है संशोधनवाद को परास्त करने की, जिसकी असल बुनियाद लोगों की चेतना के निम्न स्तर में रह गयी है, जो समाजवादी अर्थव्यवस्था की गलत योजना के जरिये साफ उजागर हो रहा है और मौजूदा समय में उसमें और बढ़ोतरी हो रही है। स्वाभाविक रूप में ऐसी स्थिति में श्रमसाध्य, धैर्यशील, वास्तविक और कारगर संघर्ष और आलोचना करने की जरूरत है। जबकि चीन की ओर से इस तरह का संघर्ष नहीं हुआ। उल्टे, संशोधनवाद को रोकने में सोवियत नेतृत्व के खिलाफ उसने जिस तरह से जवाबी हमला किया, उसने जनता और कॉमरेडों में चेतना के निम्न स्तर की वजह से उनके अंदर मौजूद उग्र राष्ट्रवादी मानसिकता को और भी इस्तेमाल कर जनता को नेतृत्व के पक्ष में लाने में व्यवहारतः संशोधनवादियों की ही मदद की है तथा प्रगतिशील अच्छी बातें करने वालों को अलग-थलग करने, हाशिये पर लाने और उन्हें इस बारे में निरुत्साहित करने का मौका दे दिया है।

इसके अलावा सोवियत संघ के संशोधनवादियों के खिलाफ चीन जो चर्चाएं कर रहा है, उन चर्चाओं में भी विचारों का तनिक अनुन्नत स्तर प्रतिबिम्बित हुआ है। लेकिन, फिर भी चीन के वक्तव्य को सही-सही समझ पाने से पता चलेगा कि क्रांतिकारी आन्दोलन के मूल मुद्दों के संबंध में और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति तथा उसके द्वन्द्व के संबंध में चीन की ओर से जो वक्तव्य पेश किये जा रहे हैं, वे मुख्यतः सही हैं। इसका मतलब यह नहीं है कि मौजूदा दुनिया के तमाम खास द्वन्द्व-संबंधों को वे सही-सही समझ पाने में सक्षम हुए हैं और हर खास द्वन्द्व-संबंध के साथ अन्तर्राष्ट्रीय आम

द्वन्द्व-संबंधों को सही तरीके से संयोजित करने में सक्षम हुए हैं। इसलिए हर खास देश की क्रांति के स्तर, उसकी रणनीति, उसके रण-कौशल का निर्णय उन्होंने सही तरीके से किया है—बात ऐसी नहीं है। जैसे भारत के संबंध में, या अन्य पिछड़े पूंजीवादी देशों में उन्होंने एकतरफा जो जनता की जनवादी क्रांति का स्तर निर्देशित किया है, उस को लेकर तरह-तरह की गड़बड़ियां हैं। चीन की क्रांति से क्रांति की रणनीति और कायदे-कौशल के संबंध में उनकी जो खास धारणाएं बनी हैं, जो तजुर्बे हासिल हुए हैं, उन खास ध ारणाओं व तजुर्बों को ही, चीनी क्रांति के उस मॉडल को ही उन्होंने सार्वजनीन कर डाला है और वे सोचते हैं कि वही पैटर्न लेकर, उसे ही हूबहू नकल कर हर देश को चलना होगा। इस तरह की कुछ-कुछ त्रुटियां हैं। इसके अलावा, सबसे बड़ी त्रुटि जो अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी आन्दोलन को नुकसान पहुंचा रही है संशोधनवाद को परास्त करने के मामले में उनका इतना बड़ा योगदान होने के बावजूद वे उसका कारगर परिणाम नहीं ला पा रहे हैं। वह है उनका आलोचना में मौजूद अत्यंत यांत्रिक, गैर-मनोवैज्ञानिक और आक्रामक लहजा। संशोधनवाद के संबंध में उनके विश्लेषण मुख्यत: सही होने के बावजूद जिस तरह से वे एप्रोच करते हैं, जिस तरह से बोलते हैं, वह यांत्रिकता के दोष से ग्रस्त है। किस स्थिति और माहौल में वे तर्क-बहस में लीन हैं और जिनके खिलाफ वे बोल रहे हैं, बोलते वक्त उनकी और पूरी दुनियाभर में उनके समर्थकों की चेतना का स्तर किस जगह पर है, उसे वे बिल्कुल ही नहीं पकड़ पा रहे हैं। इस तर्क-बहस के जरिये उनकी वैचारिक चेतना का स्तर उन्नत कर उन्हें भी तो आकर्षित करना चाहिए, उन्हें भी तो समझाना चाहिए। नहीं तो, आलोचना का क्या मतलब है? चीन की एप्रोच के संबंध में यही हमारी आलोचना है। उनका मूल वक्तव्य, संशोधनवाद के संबंध में उनका विश्लेषण मुख्यत: सही है। लेकिन जिस तरह से वे एप्रोच करते हैं, जिस तरह से वे कहते हैं—वह यांत्रिकता के दोष से ग्रस्त है।

मसलन, जब हम समाजवाद की बात करते हैं, तो हम निश्चित उद्देश्य पूर्ति के लिए ही निर्दिष्ट तौर पर करते हैं। हम हवा में

बात नहीं करते। उसी तरह जब हम संशोधनवाद के संबंध में बोलते हैं, तो विभिन्न देशों के संशोधनवादियों का मानसिक गठन किस स्थिति में है उसे ध्यान में रखकर ही बोलते हैं ताकि उन्हें संशोधनवादियों का चरित्र समझाया जा सके और उनके खिलाफ उन्हें व्यापक तौर पर संघर्ष में लाया जा सके। खास तौर पर जब हम सोवियत संशोधनवादियों के संबंध में कह रहे हैं, तो हमारे कहने का उद्देश्य है या तो इसके जरिये सोवियत जनता की चेतना का स्तर ऊपर उठाकर नेतृत्व को सुधारना चाह रहे हैं नहीं तो एक आन्दोलन निर्मित कर संशोधनवादी नेतृत्व को हटाना चाह रहे हैं। इन दोनों में से कोई एक चीज तो हम चाहते हैं। नहीं तो हमारी आलोचना का उद्देश्य क्या है? एक और चीज हम चाहते हैं, वह है विभिन्न देशों के साम्यवादी आन्दोलन को, जनता के मुक्ति संग्रामों को, क्रांतिकारी आन्दोलनों को, सही जनवादी आन्दोलनों को सोवियत संशोधनवाद के प्रभाव से बचाना। इसलिए, सोवियत संशोधनवादी नेतृत्व के खिलाफ आलोचना करते वक्त हमें यह ख्याल रखना होगा कि वहां जो लोग नेतृत्व में हैं, उन पर जनता की अस्था है। पूरी दुनिया में कम्युनिस्टों की चेतना का स्तर क्यों गिरा हुआ है, इसे लेकर हम अफसोस कर सकते हैं, लेकिन इसके लिए कमोबेश हम सभी जिम्मेवार हैं। आज की इस स्थिति को पूरी तरह से नकार कर हम संशोधनवाद के खिलाफ संघर्ष नहीं कर सकते। इस वास्तविक सच्चाई को हमें स्वीकार करना ही होगा कि सोवियत संघ की अपील का असर लोगों में काफी ज्यादा है। देखिएगा, ज्यादातर लोग जो विद्वान के रूप में परिचित हैं, शिक्षित के रूप में परिचित हैं। उन सभी को मैं विचार बुद्धिहीन या बेईमान (unscruplous) नहीं मान सकता–उनमें से अनेक लोगों का मानना है कि वियतनाम मुक्ति संग्राम में समाजवादी खेमे की एकता न होने के लिए चीन का उग्र आचरण ही पूरी तरह से जिम्मेवार है। यहां तक कि सीपीआई(एम) के अनेक नेता–उनमें कोई-कोई स्वार्थी हो सकते हैं–लेकिन इन वक्तव्यों के साथ कम से कम जो कॉमरेड सहमत हैं, उनमें कुछ शिक्षित पुराने कॉमरेड हैं, वे इस संबंध में क्या धारणा रखते हैं? वे भी यह तर्क देते हैं कि कम से कम

वियतनाम के मुक्ति संग्राम के हित में साम्राज्यवाद को रोकने के लिए एकता कायम करने की जरूरत है और वियतनाम के संग्राम में एकताबद्ध रूप से मदद करने के सोवियत संघ के प्रस्ताव में अड़चन डालने के जरिये चीन एकता का ही विरोध कर रहा है और वियतनाम के संग्राम को नुकसान पहुंचा रहा है।

नेतृत्व के सवाल को दरकिनार कर सही तौर पर कोई एकता कायम नहीं हो सकती

वे समझ ही नहीं पा रहे हैं कि यह एकता का प्रस्ताव दरअसल सोवियत नेतृत्व का दिखावा मात्र है। उनका मकसद था, इस नारे को उछालकर कम्युनिस्ट आन्दोलन में असचेत लोगों के समक्ष चीन को असुविधाजनक स्थिति में डालना। देख रहा हूं कि ज्यादातर दिग्गज क्रांतिकारी भी इस एकताबद्ध संघर्ष में जाने का सवाल उठाकर चीन को बिल्कुल उसी असुविधाजनक स्थिति में डालना चाहते हैं। वे समझ ही नहीं पाये कि इस एकताबद्ध संघर्ष में कुछ वास्तविक सवाल जुड़े हुए थे। एकता के सवाल को द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी जिस ढंग से समझते हैं, वह यह है कि तमाम एकता में एक की प्रधान या नेतृत्वकारी (dominant) भूमिका होती है। इस मामले में, इस एकता में प्रधान भूमिका किसकी होगी? चीन की या रूस की? इस मामले को दरकिनार कर कोई वास्तविक एकता नहीं हो सकती। बहुतों का मानना है कि जहां एकता की जरूरत ही सबसे ज्यादा है, क्या वहां इस सवाल को खामखा घसीट लाकर पहले इसी की मीमांसा करनी होगी? यह मीमांसा करने से क्या एकता हो पायेगी? या दोनों में मेलजोल से जो भी एकताबद्ध प्रयास हो रहा है, उसका इससे और भी नुकसान होगा? चेतना के निम्न स्तर की वजह से वे सोचते हैं कि देखो, वियतनाम के संग्राम में लड़ने के लिए उत्साहित होने की बजाय ये दोनों यह फैसला करने बैठे हैं कि इस एकता में किसकी प्रधानता रहेगी। वे यह नहीं समझ पाते हैं कि यह एक वास्तविक और मौलिक प्रश्न है, क्योंकि एकताबद्ध संघर्ष में यदि सोवियत की प्रधानता रहती है, तो उसका नतीजा संशोधनवाद के पक्ष में जायेगा। क्रांति की मदद करने के नाम पर वह अंतत: संशोधनवादी

गुट के प्रभाव-क्षेत्र को बढ़ाएगा और वियतनाम की क्रांति को अन्तर्राष्ट्रीय क्रांति के पक्ष में एक दुर्ग (bulwark) के तौर पर काम करने लायक विराट क्रांतिकारी ताकत में तब्दील होने की तमाम संभावना को बर्बाद कर देगा। यही है चीन का वक्तव्य। इसके साथ कोई सहमत न भी हो सकता है। लेकिन सोवियत संघ ने जिस सस्ते नारे को उछाला है, उसके आधार पर चीन की आलोचना करने से पहले इस विषय पर गंभीरतापूर्वक सोचकर देखना चाहिए। दूसरी बात यह है कि इस एकता के सवाल की मीमांसा करने से पहले देखना होगा कि वियतनाम को सोवियत संघ द्वारा उन्नत ढंग के अस्त्र-शस्त्र और तकनीकी सहायता देने के मामले को लेकर वर्तमान में जो परिस्थिति पैदा हो गयी है, उसकी मीमांसा कैसे होगी? वियतनाम के युद्ध में सोवियत संघ यदि चीन के विशेषज्ञों और स्थानीय नेतृत्वकारी कॉमरेडों के हाथों में बेशर्त अस्त्र-शस्त्र सौंप देता, तो यह सवाल नहीं उठता। सोवियत संघ ने तो ऐसा किया नहीं। वियतनाम में अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ इस युद्ध में सोवियत अपने प्रक्षेपास्त्र या दूसरे-दूसरे हथियार चीन के विशेषज्ञों के हाथों में सौंप रहा हो और एकता कायम करने का प्रस्ताव दे रहा हो—जबकि इसके बावजूद भी चीन एतराज कर रहा हो—क्या ऐसा कोई सबूत है? यदि ऐसा होता, तो हम समझते कि चीन का एतराज कठमुल्लावाद (dogmatism) की वजह से आ रहा है। चूंकि सोवियत संघ संशोधनवादी है, इसलिए वह उसके साथ एकता नहीं चाहता है और एक खास क्षेत्र में एकता के जो अच्छे नतीजे हैं, उन्हें भी वह नहीं देख पा रहा है।

इसलिए जो बात मैं कह रहा था कि चर्चा के जरिये चीन द्वारा सोवियत संघ को यह दिखाने की जरूरत थी कि जिस संशोधनवादी नीति की वजह से चेकोस्लोवाकिया में यह घटना घटी, यदि वह नीति जारी रही, तो वहां के शासक गुट के साथ आखिर तक कोई समझौता हो भी जाये, तो क्या उससे समाधान हो जायेगा? मसलन, नोवोत्नी (Novotny) सोवियत लाइन के समर्थक थे, वे भी संशोधनवादी थे। लेकिन वे भी नेतृत्व से हट गये। मौजूदा समय में जो लोग नेतृत्व में हैं, वे भी सोवियत लाइन के समर्थक हैं। लेकिन चूंकि वे खुद संशोधनवादी हैं, इसलिए कहीं ऐसा न हो कि उनसे भी उग्र

संशोधनवादी गुट उन्हें हटा दे तथा देश को और बदतर स्थिति में पहुंचा दे–ऐसी संभावना को खारिज नहीं किया जा सकता। बल्कि यह डर सभी को है, खासकर पूर्वी जर्मनी को, क्योंकि पूर्वी जर्मनी में राष्ट्रीय अपमान है (national humiliation) बोध है–जो एक खास तरह के जर्मन राष्ट्रीय अहंकार से पैदा हुआ है। क्या इसकी जानकारी सोवियत नेतृत्व को नहीं है? क्या सोवियत नेतृत्व नहीं जानता कि पूर्वी जर्मनी में इतने पुनर्निर्माण, समाजवादी समाज व्यवस्था की इतनी श्रेष्ठता के बावजूद कोई व्यक्ति पश्चिम जर्मनी को छोड़कर पूर्वी जर्मनी में बसने के लिए नहीं चला आता! बल्कि झुंड के झुंड लोग पूर्वी जर्मनी को छोड़कर पश्चिमी जर्मनी चले जा रहे थे, जिसके चलते पूर्वी बर्लिन और पश्चिमी बर्लिन के बीच पूर्वी बर्लिन की ओर से उन्होंने सीमा को सील कर दिया है।* इसका क्या मतलब है? इसका मतलब है–पूर्वी जर्मनी की जनता अभी भी जर्मन राष्ट्रीय अहंकार से मुक्त नहीं हुई है। उसमें उग्र राष्ट्रीय चेतना बोध (national jingoism) मौजूद है। वैचारिक संघर्ष की कमजोरी के चलते यह चीज वहां रह गयी है। स्तालिन के कार्यकाल के अंतिम दौर में कम्युनिस्ट आन्दोलन में मौजूद इस कमजोरी को दूर करने का एक संघर्ष शुरू हुआ था। लेकिन स्तालिन सभी पहलुओं को समेट कर यह संघर्ष शुरू नहीं कर सके। फिर भी जिस हद तक स्तालिन ने यह संघर्ष शुरू किया था, मौजूदा सोवियत नेतृत्व ने वैचारिक तौर पर तमाम क्षेत्रों में यह संघर्ष चौपट कर दिया है। इसलिए, वे इस उग्र राष्ट्रवाद की बुराई को कैसे दूर करेंगे? वह हथियार कहां है? क्या यह उनकी बातों को सुनकर दूर हो जायेगी? दरअसल उग्रराष्ट्रवाद की ये सारी बुराईयां वहां मौजूद हैं। ये घटनाएं इसका सबूत हैं।

सोवियत नेतृत्व का आचरण कम्युनिज्म की महानता को लोगों की नजरों में गिरा रहा है

इसलिए यदि चेकोस्लोवाकिया में यह घटना होती है, तो पूर्वी जर्मनी की रक्षा करना पूर्वी जर्मनी के नेताओं के लिए मुश्किल होगा।

* पूर्वी और पश्चिमी जर्मनी के बीच की बर्लिन की दीवार का निर्माण 1960 में ख्रुश्चेव के जमाने में हुआ था।

इसका मतलब बर्लिन का एकीकरण है, जिसे उन्होंने दूसरे रास्ते करना चाहा है, उसे अंदरूनी प्रतिक्रांतिकारी अभ्युत्थान के रास्ते ही करने की कोशिश होगी और तब सोवियत संघ को फिर सेना भेजकर उसे दबाना पड़ेगा। पोलैण्ड में भी उसी तरह की घटना घट जायेगी। रूमानिया में यही घटना घट चुकी है। स्वाभाविक तौर पर पूर्वी जर्मनी और पोलैण्ड सोवियत संघ पर दबाव डाल रहे हैं कि वह चेकोस्लोवाकिया में इस चीज को शुरू में ही दबा दे। लेकिन, क्या इसी से इसका अंत हो जायेगा? चीन का विश्लेषण ऐसा ही होना चाहिए था। या तो वह कुछ न बोले या फिर अगर बोलना ही है तो व्याख्या करते हुए विस्तार से निबंधों के जरिये सभी बोलना होगा। सोवियत संघ ने जो यह हस्तक्षेप किया, उसके नकारात्मक पहलुओं का विश्लेषण कर उनको दिखाते हुए बोलना होगा कि चेकोस्लोवाकिया में प्रतिक्रांति को बढ़ने मत दीजिए। यहां अगर प्रतिक्रांति बढ़ती है, तो पूर्वी यूरोप के अन्य सब देशों में भी, सोवियत संघ के प्रभावाधीन क्षेत्रों में भी ऐसी ही घटना घटेगी। क्योंकि जिस उदारतावाद का रास्ता उन्होंने खोल दिया है, वह निरंतर उदारतावादी ताकतों को जन्म दे रहा है और उन्हें फलने-फूलने का मौका दे रहा है। वैचारिक केन्द्रीयता न रहने के चलते और इतने दिनों तक जिस सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद ने दुनिया के साम्यवादी आन्दोलन को संचालित किया, उस हथियार को नष्ट कर देने के चलते सोवियत संघ के पास इन ताकतों को काबू करने, या उन्हें रोकने की कोई क्षमता नहीं है। दरअसल 'सर्वहारा अन्तर्राष्ट्रीयतावाद' आज सिर्फ बात के लिए बात में तब्दील होकर रह गया है। इसके बारे में कोई जज्बा, या कोई गहरी समझदारी प्रतिबिम्बित नहीं हो रही है। इसलिए, क्या ऐसी स्थिति में सैनिक हस्तक्षेप द्वारा सोवियत संघ इस चीज को नियंत्रित कर पायेगा? आज जिस चीज को वे दबा रहे हैं, कल फिर वही चीज आ सकती है। जबकि, उल्टे इसका नतीजा क्या हो रहा है? दूसरी तरफ से यह दमन नीति डर के आधार पर, अवमानना के आधार पर सोवियत शासन और आम तौर पर साम्यवाद के संबंध में एक विरोधी मानसिकता पैदा कर रही है। इसके जरिये वह कम्युनिज्म की महानता को लोगों की नजरों में हेय ठहराने में मदद कर रही है।

यदि यह प्रक्रिया चलती रही, तो सोवियत संघ वहां क्रांति की हिफाजत नहीं कर पायेगा। यहां तक कि सोवियत संघ अपने प्रभावाधीन क्षेत्रों को भी महज सैनिक हस्तक्षेप के जरिये बचा नहीं पायेगा। और यदि सैनिक हस्तक्षेप करके ही सोवियत के प्रभाव की लगातार रक्षा करनी पड़ती है, तो वे समाजवादी राष्ट्र को गिरा कर कहां तक ले जा रहे हैं? उस मामले में साम्राज्यवादी देश के साथ सोवियत संघ का तफर्का कहां रहता है? क्या इस बात को वे नहीं समझ पा रहे हैं? इसलिए ये सारी चीजें आनुषंगिक बुराइयों के तौर पर आ रही हैं। लेकिन, क्या इन्हें अवश्यंभावी तौर पर आना चाहिए था? क्या ये चीजें आनी ही थीं? या सोवियत नेतृत्व के इन भटकावों की वजह से आयी हैं। इस तरह से विश्लेषण कर एक, दो, तीन, चार करके बिन्दुवार दिखा देना होगा। दिखाकर कहना होगा कि वे इनसे सीख लें। तब सोवियत नेतृत्व विश्व जनमत को सिर्फ दिग्भ्रमित करने के लिए जो बातें कह रहा है, उसकी चालाकी पकड़ में आ जायेगी। यहां तक कि आज यदि कुछ कम्युनिस्ट सोवियत संघ की बातों से गलतफहमी के शिकार भी होते हैं, यदि इस बात पर विश्वास भी कर लेते हैं कि सोवियत संघ क्रांति की हिफाजत के लिए चेकोस्लोवाकिया में गया था, तो फिर कल ही उनके समक्ष यह सच्चाई स्पष्ट हो जायेगी कि ये बातें सही नहीं हैं। जैसे सोवियत संघ की मित्र होने के बावजूद फ्रांस की कम्युनिस्ट पार्टी ने चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ के हस्तक्षेप का विरोध किया है। वह तो चीन की मित्र नहीं है, वह सोवियत की ही मित्र है। वह संशोधनवादी है, चीन-विरोधी है। तो क्या सोवियत संघ इस बात को नहीं समझ पा रहा है कि कैसी परिस्थिति वे पैदा कर रहे हैं? क्या यह चीज अचानक आसमान से टपक पड़ी है? कम्युनिस्ट आन्दोलन की विजय यात्रा की एक ऐसी उन्नत स्थिति में–जब युद्ध के बाद की परिस्थिति में साम्राज्यवाद करीब-करीब एक कोने में धकेला जा चुका था, समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता और विजय का डंका बज रहा था, विश्व व्यवस्था के तौर पर उसका आविर्भाव हुआ था। ऐसे समय में ऐसी दुखद घटना घट गयी। कम्युनिज्म के खिलाफ लड़ने की यह ताकत पूंजीवाद ने कहां से जुटा ली? सोवियत नेतृत्व तो ऐसा नहीं

सोचता कि पूंजीवाद कम्युनिज्म से भी प्रगतिशील है? यदि वे ऐसा सोचते हैं, तो वे साफ-साफ बताएं। दुनिया की जनता को भी पता चले। तभी तो उनकी बात लोग समझेंगे। नहीं, वे निश्चित तौर पर ऐसा नहीं सोचते। तब उनके संशोधनवादी दृष्टिकोण और गतिविधियों से ही ये बातें आ रही हैं। आलोचना के दौरान चोट पहुंचाने के लोभ को दबाकर मौजूदा परिस्थिति में चीनी पार्टी के नेतृत्व को इस तरह से कहने की अत्यंत आवश्यकता थी।

इतना बड़ा मौका था, मैं समझता हूं इस मौके का फायदा उठाकर सोवियत संघ की जनता में नये ढंग से सोच-विचार शुरू करवा देने की गुंजाइश थी। दुनिया के बहुत सारे 'संजीदा' कम्युनिस्टों में आज भी सोवियत संघ के प्रति मोह है। उनके अंदर नये ढंग से सोच-विचार शुरू करवा देने का मौका था। लेकिन चीन की पार्टी ने कह दिया कि चेकोस्लोवाकिया में सोवियत का हस्तक्षेप बिल्कुल हिटलर के हमले जैसा था। इस तरह कहने के साथ-साथ ही सामान्य बुद्धि से लोगों ने सोच लिया—काफी बढ़-चढ़कर कहा जा रहा है—यह निहायत ही गाली-गलौज है। इसलिए, जिन लोगों को समझाया जा सकता था, समझाने पर वे विषय को समझ सकते थे और इसके फलस्वरूप संशोधनवादी नेतृत्व को बदलना शायद संभव होता, उस प्रक्रिया को चोट पहुंची। इसके जरिये संशोधनवादी नेतृत्व को बदल न पाने पर भी नुकसान नहीं था क्योंकि यह संघर्ष दोतरफा होता। या तो इसके जरिये नेतृत्व खुद में सुधार लाकर क्रांति के रास्ते पर लौट आता। या फिर अंदर से रूस की जनता और कम्युनिस्टों द्वारा संशोधनवादी नेतृत्व को हटाना संभव होता। जैसे चेकोस्लोवाकिया में वर्तमान में जो लोग सत्तासीन हैं, उन्होंने पहले के शासक गुट को उखाड़ फेंका। प्रतिक्रांति की ताकत को जुटाकर उन्होंने पहले के शासक गुट को उखाड़ फेंका क्योंकि, पहले के शासक गुट की राजनीति प्रतिक्रांति निर्मित करने में सहायक थी। यदि हम क्रांतिकारी राजनीति दे सकें, तो वह क्रांतिकारी राजनीति संशोधनवादियों के खिलाफ क्रांतिकारी ताकत को निर्मित करने में मदद करेगी और एक दिन वे पार्टी से संशोधनवादी नेतृत्व को उखाड़ फेंकने में सफल होंगे। यह घटना घट सकती है और इसी प्रक्रिया में हमें काम करना चाहिए। इसलिए, सकारात्मक पहलू से

शुरू करना चाहिए। उनके संबंध में विभिन्न घटनाओं से मुझे सकारात्मक पहलु का अहसास हुआ है। इसलिए मैंने यह बात कही है। जबकि चीन जो दिखा रहा है, वे सिर्फ नकारात्मक पहलू हैं और उनके आधार पर उनकी जितनी निन्दा की जा सकती है, चीन की पार्टी वही कर रही है। यह अत्यंत खराब और खतरनाक प्रवृत्ति है, जिसे हम बड़ी आशंका के साथ नोट कर रहे हैं। क्योंकि विश्व परिस्थिति को मोड़ देने और क्रांति के पक्ष में उसे (pattern) ढाल देने की जो क्षमता चीन की पार्टी में है, उसका लाखवां हिस्सा भी हममें नहीं है। लेकिन इतनी बड़ी पार्टी होकर भी विषय को सही तौर पर न समझ पाने के चलते, अति उत्साह या एकतरफा रुझान या जज्बात के वश में होने के चलते, यांत्रिक और थोड़ी गलत एप्रोच के चलते वह इन विषयों को समझ नहीं पा रही है।

इसके अलावा विचार करते वक्त हमें एक और महत्वपूर्ण बात भी याद रखनी होगी। वह है, चेकोस्लोवाकिया जो रुझान प्रतिबिम्बित कर रहा था, वह खतरनाक प्रतिक्रांतिकारी रुझान था। दूसरी तरफ सोवियत संघ के संबंध में हमारा विश्लेषण यह है कि सोवियत नेतृत्व संशोधनवादी होने के बावजूद सोवियत समाज व्यवस्था अब भी मूल रूप से समाजवादी है तथा सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी मूल रूप से कम्युनिस्ट पार्टी है जबकि इसका नेतृत्व संशोधनवादियों के हाथों में है।*

जब तक यह विश्लेषण सही है, तब तक मैं समझता हूं कि

---

* प्रस्तुत चर्चा में तो है ही इसके अलावा चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस की रिपोर्ट पर (1973) तथा अन्य विभिन्न चर्चाओं में कॉमरेड शिवदास घोष ने दिखाया था कि यदि सोवियत संघ में संशोधनवादी धारा फौरन बंद नहीं हुई, तो वह सोवियत समाजवाद को ध्वस्त कर देगी, उसे रोका नहीं जा सकेगा। उन्हीं की सीखों के आधार पर एसयूसीआई की केन्द्रीय कमेटी ने संशोधनवादी गोर्बाचौव गुट द्वारा लाये गये पेरेस्त्राइका व ग्लासनोस्त को शुरू में ही प्रतिक्रांति का ब्लू प्रिंट कहा और 1990 के 27 मार्च को केन्द्रीय कमेटी के फैसले में कहा गया कि सोवियत पार्टी अब कम्युनिस्ट पार्टी नहीं रही और सोवियत संघ में पूंजीवाद पुनर्स्थापित हो गया।

यदि प्रतिक्रांतिकारी अभ्युत्थान के जरिये चेकोस्लोवाकिया यूरोप में साम्राज्यवाद के गढ़ और सैनिक अड्डे में तब्दील होने की स्थिति में पहुंच गया हो, तो सापेक्ष तौर पर संशोधनवादियों के साथ रहना भी बेहतर है। इस मायने में सोवियत के हस्तक्षेप को इतना बुरा नहीं कहा जा सकता। उसका कानूनी तौर पर समर्थन किया जा सकता है और मेरे विचार से ऐसा करना उचित भी है। लेकिन, उसके पीछे नैतिक समर्थन नहीं है। सोवियत संघ यदि सच्चे कम्युनिस्टों का नैतिक समर्थन पाना चाहता है तो उसे अपने संशोधनवादी रास्ते से वापस लौटना होगा। यदि ऐसा नहीं होता है तो इसका कोई नैतिक औचित्य नहीं रह जाता। यह निष्कृट तरह का हस्तक्षेप है। जिस परिस्थिति को सोवियत संघ ने खुद पैदा किया है, उसी परिस्थिति को फिर अपने नियंत्रण में रखने के लिए उसने वहां हस्तक्षेप किया है। इसका कोई नैतिक औचित्य नहीं है। अतएव इस संघर्ष की प्रकृति क्रांति और प्रतिक्रांति के बीच संघर्ष की प्रकृति नहीं है। दरअसल यह संघर्ष दो संशोधनवादी ताकतों के बीच का संघर्ष है—जो दोनों ताकतें अन्य फौरी आवश्यकताओं (exigencies) के लिए प्रतिक्रांतिकारी ताकतों का द्वार खोल रही हैं।

आलोचना का दृष्टिकोण क्या होगा

लेकिन, हमें किसी भी वजह से बुर्जुआ के सुर के साथ सुर मिलाकर बात नहीं करनी चाहिए। क्योंकि यहां एक और बात याद रखनी होगी। गौर कीजिए, इतनी बड़ी घटना घट गयी, हंगरी के वक्त भी जो शोर-गुल, हो-हल्ला मचाया गया; यहां तक कि साम्राज्यवादियों ने जवाबी हस्तक्षेप की बात भी कही। लेकिन, इस बार वे ऐसा नहीं कह रहे हैं। इस बार जॉनसन (तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति) ने कई बड़ी-बड़ी बातें कर राजनैतिक फायदा उठाना चाहा है। लेकिन वे शुरू से ही इस मामले को राष्ट्र संघ, सुरक्षा परिषद में यह जानते हुए लाये हैं कि वहां इस पर चर्चा नहीं होगी। उनमें यह भावना काम कर रही थी कि इससे ज्यादा कुछ करना उचित नहीं होगा। ज्यादा कुछ करने से ही ज्यादती हो जायेगी। तब, तो सोवियत अंततः रुख बदलकर चीन की ओर ही खड़ा हो जायेगा,

सही क्रांतिकारी लाइन पर लौट आयेगा, क्योंकि आज भी सोवियत राजसत्ता एक समाजवादी राजसत्ता ही है। वे जानते हैं कि दरअसल सोवियत संघ जिस लाइन को लेकर चल रहा है, उसी के फलस्वरूप ये सारी चीजें हो रही हैं। वह आज भी मूलत: साम्राज्यवाद के समक्ष आत्मसमर्पण की नीति के दायरे में ही आता है और उसकी यह स्थिति साम्राज्यवादियों के लिए सबसे ज्यादा जरूरी है। इसलिए साम्राज्यवादियों का उद्देश्य सिर्फ यही था कि प्रचार के जरिये इस मौके का फायदा उठाना कि इसको ही आधार बनाकर कम्युनिज्म को और कितना हेय किया जा सके, दबाव डालकर उदारवाद के अमल को और कितना तेज किया जा सके तथा उदारवाद के प्रभाव को विश्वव्यापी कम्युनिस्ट आन्दोलन में और कितना फैलाया जा सके। इससे ज्यादा कुछ नहीं। इससे भी समझा जा सकता है कि चेकोस्लोवाकिया में यदि सोवियत का हस्तक्षेप मूलत: क्रांति की हिफाजत के लिए ही होता, तो अमेरिका का रुख–रवैया इतना नरम नहीं होता।

मैं समझता हूं कि चेकोस्लोवाकिया की घटना सोवियत संघ को इस बात को सोचने पर विवश भी कर सकती है कि इस ढंग से एक के बाद एक देश में क्यों इस तरह के लक्षण दिखाई पड़ रहे हैं? यह तो ऐसी बात नहीं है कि सिर्फ चेकोस्लोवाकिया में ही यह घटना घटी है। इससे पहले रूमानिया में भी यह घटना घट चुकी है। पोलैण्ड में भी यह घटना घटी है। पूर्वी जर्मनी की जनता में समाजवादी देश पूर्वी जर्मनी को छोड़कर अन्य देशों में चले जाने की प्रवृत्ति साबित करती है कि आम जनता में इन देशों के शासक गुटों के खिलाफ कितना असंतोष बढ़ रहा है। सोवियत नेतृत्व को इन चीजों को समझना चाहिए और इस मामले को गहराई से समझना चाहिए। इसलिए उनमें नये ढंग से सोच-विचार करने की संभावना है। इससे पहले भी मैंने देखा है कि वे ठोकर खाये बगैर सोच-विचार नहीं करते। उनके वापस लौटने की प्रक्रिया में मदद पहुंचाने के लिए ही हमें दूसरी तरह से आलोचना करने की जरूरत है। जिस तरह उनके संशोधनवादी चरित्र को दिखाने की जरूरत है, उसी तरह चेकोस्लोवाकिया में हस्तक्षेप के मामले में वे वहां की क्रांति

की हिफाजत करने का जो ढोंग कर रहे हैं, उसकी आलोचना करना भी जरूरी है। फिर पूंजीवादी-साम्राज्यवादी देश जिस नजरिये से आलोचनाा कर रहे हैं, उसके साथ हमारी आलोचना का क्या अंतर है, इसको भी समझा देना जरूरी है।

साम्राज्यवादी-पूंजीवादी देशों द्वारा की गयी आलोचना के साथ हमारी आलोचना का बिल्कुल कोई संबंध नहीं है। दरअसल उनकी बातें प्रतिक्रांतिकारियों के समर्थन में हैं, कम्युनिज्म को कलंकित करने के लिए हैं। उनका मकसद साफ है। वे चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ के हस्तक्षेप की निन्दा कर रहे हैं। लेकिन, चेकोस्लोवाकिया में क्या हो रहा है? वहां जो उपद्रव पैदा कर रहे थे, उनके साथ सोवियत संघ समझौता करके मामले को रफा-दफा करने का प्रयास कर रहा है। और, चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ के इतने बड़े हस्तक्षेप से कितना नुकसान पहुंचा? साम्राज्यवादी देश लाख कुप्रचार चलाकर भी कुछ नहीं कर पाये हैं। झूठ को गढ़ने का मौका भी उन्हें नहीं है। हां, चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ ने हस्तक्षेप किया तो है, लेकिन कितनी कम क्षति पहुंचाकर यह काम किया जाय, उसकी कोशिश भी हुई है। इस संबंध में सोवियत संघ ने चरम संयम का परिचय दिया है। और, साम्राज्यवादी क्या कर रहे हैं? वे अपने देश में जनता के आन्दोलनों का बर्बरता से दमन कर रहे हैं, अन्य देशों में एक के बाद एक हस्तक्षेप कर रहे हैं। अमेरिका ने वियतनाम में वीभत्स नरसंहार किया है। मानवतावादी आचरण संहिता तो दूर की बात, उसने किसी भी आचरण संहिता की परवाह नहीं की है। पूरे द्वितीय विश्वयुद्ध में हुई तमाम आपराधिक गतिविधियों को भी उसने वहां पीछे छोड़ दिया है। तब सोवियत हस्तक्षेप के खिलाफ साम्राज्यवादियों को इतना हो-हल्ला करने का क्या हक है? जबकि वे खुद ही पूरी दुनिया में एक के बाद एक इससे भी जघन्य काम कर रहे हैं। इसलिए साम्राज्यवादियों को चेकोस्लोवाकिया में सोवियत हस्तक्षेप की आलोचना करने का कोई हक नहीं है। चूंकि साम्राज्यवादी अन्य देशों में हस्तक्षेप कर रहे हैं, इसलिए चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ का हस्तक्षेप करना सही है—ऐसा भी हम नहीं कह रहे हैं। हम समझते हैं कि

चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ हस्तक्षेप कर अन्याय कर रहा है। लेकिन यह अन्याय उसे एक और गलती के नुकसान की भरपाई करने के लिए करना पड़ा है। इस तरह वह एक के बाद एक गलती करता जायेगा, जब तक वह खुद को संशोधनवाद के प्रभाव से मुक्त नहीं कर लेता और क्रांति की ओर नहीं लौट आता। अतएव, एक सही कम्युनिस्ट जब तक पूरी तरह से यह फैसला नहीं कर लेता कि उनमें लौटने की कोई और संभावना नहीं रही, तब तक उनकी गतिविधियों का पूरी तरह से समर्थन या फिर शुरू से अंत तक गाली-गलौज न कर वह ऐसा प्रयास करेगा कि वह वापस लौट आ सके। चेकोस्लोवाकिया में सोवियत संघ के हस्तक्षेप की इस घटना को हम इसी नजरिये से देखते हैं। हमारा मानना है कि इसी नजरिये से इस विषय पर विचार करना चाहिए।

26 अगस्त, 1968 को दिया गया यह भाषण
1 अक्तूबर 1986 को बांग्ला भाषा में
पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ था।
अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'प्रोलिटेरियन एरा'
के 15 नवम्बर, 1986 के नवम्बर क्रांति विशेषांक
में प्रकाशित हुआ था।